दिल की गहराई से

(द्वितीय भाग)

ज्योतिप्रकाश

का न्ति प्र भा - प्र का श न

दिल की गहराई से

(द्वितीय भाग)

लेखक—

ज्योतिप्रकाश

प्रकाशक—

कान्तिप्रभा प्रकाशन

डालटनगंज (बिहार)

मूल्य १॥)

प्रकाशन
डालटनगंज (बिहार)



मुद्रक—
राममोहन शास्त्री
श्रीगोविन्द-मुद्रणालय, बुलानाला, बनारस

समर्पण

मेरी यह पुस्तक उस समाज को ही भेंट है—जिसके लिये

आधीरात के समय आँसुओं के बीच

यह लिखी गई !

शुरू करने से पहले !

'दिल की गहराई से' है क्या ? यह कोई कहानी-संग्रह नहीं है, यह कोई निबन्ध भी नहीं, यह कोई उपन्यास भी नहीं। मगर तो भी—यह कहानी है, निबन्ध है, उपन्यास है—यह सबका संगम है, यह त्रिवेणी है ! यह आज के मानव-जीवन और समाज का चित्रात्मक लेखा-जोखा है। इसमें आप कहानी-निबन्ध और उपन्यास तीनों के गुण-अवगुण पा सकेंगे। गुण-अवगुण इसलिये लिखा कि मैंने इस किताब को कहानी-उपन्यास की कहे जाने वाली टेकनिक से नहीं बाँधा ! कला कला के लिये और स्वान्तः सुखाय, इस तरह की बातें मेरे स्वभाव में कभी नहीं आतीं और न मैं ऐसा समझ कर लिखता ही हूँ। इस किताब को भी जब मैं लिखने बैठा तो बराबर मुझे ख्याल रहा कि मेरी यह भेंट, आम जनता के लिये है—दीन-हीन गरीब-अच्छे-बुरे-झोपड़ी-महल सब जगह और सब जगह के लोग, मेरी इस किताब को पढ़ेंगे और पढ़कर अपने दिलों को टटोलेंगे। कहानी-उपन्यास कला की कुछ बारीकियाँ समझते हुए भी मैंने उन्हें अपने कहने-

सुनने में बाधा नहीं बनने दिया जो कुछ मुझे कहना है—मैंने सीधी और साफ भाषा में आप से कहा है, आप के समाज से कहा है, गरीबों से कहा है, अमीरों से कहा है, हाकिम-हुक्कामों से कहा है, माँ-बहनों से कहा है और आप के नेताओं से कहा है। गाँव और शहर—कोई हम से नहीं छूटे हैं। मैंने सिर्फ कहानी के लिये कहानी न लिख कर सीधे जड़ पकड़ना चाहा है—आखिर समाज का रोग है कहाँ? ये चीजें ऐसी हैं—जो दिमाग पर तो असर करेंगी ही मगर मेरा निवेदन आप के दिलों से है। मैंने उन्हें छूना चाहा है!

निरुद्देश्य कोई वस्तु नहीं होती, कहानी भी नहीं, उपन्यास भी नहीं। सिर्फ अपना-अपना कहने का ढंग है। हर लिखने वाले का कुछ-न-कुछ अभिप्राय तो रहता ही है कहानीकार उसे कहानी के पात्रों के जरिये प्रकट करता है उपन्यासकार भी अपने चरित्रों से कहता-कहलाता है। मुझे भी कुछ कहना है और जो कुछ मुझे कहना है, मेरे दिल को पहले ही वे छू चुके हैं, इसलिये बगैर किसी कला का रूप दिये हुए मैंने उन्हें अपने ढंग से कह दिया है। अब वे ऊँचे-नीचे दरजे की चीजें भी बन सकती हैं, कला भी हो सकती हैं, अपने भीतर जानदार भी हो सकती हैं या फिर कुछ भी नहीं हो सकती हैं! यह सब परखना, अब आप के जिम्मे है! मुझे जो कहना था—मैंने कह दिया। मैंने समाज का हृदय साफ तरीके से टटोल दिया, अपनी तरफ से कुछ इलाज भी निर्देश कर दिया। मैं नहीं जानता अब यह समाज की

'बाइबिल' बन सकी हैं या नहीं क्योंकि कहानी के भेद पकड़ने वाले तब फिर कहेंगे कि कहानी कैसी जो उपदेश दे, उपदेश देना धर्म का काम है। मैं इसे मानता हूँ मगर इससे भी इन्कार नहीं करता कि कहानी समाज का ही आइना है और आइना में देखते समय सब कुछ की छवि ठीक-ठीक आनी ही चाहिये। हम अपनी ओर से कुछ न रोकेंगे, नहीं तो छवि-विकृति का दोष लगेगा और मेरा अभिप्राय सिर्फ चन्द विद्वानों का मनोरंजन ही होगा—आम जनता का नहीं! बहुत से साहित्यिकों से क्षमा माँगते हुए मैं निवेदन करता हूँ कि उनका प्रयोजन प्रायः यह होता है कि उनकी चीजों की विद्वानों के बीच मान्यता हो—टेकनिक, कला-आवरण से ढकी हुई उनकी कृतियाँ विद्वानों के दिमाग तक जँच जायँ और मैं कहता हूँ कि यहीं पर आज के बहुत-से हिन्दी साहित्यिकों से भूल हो रही है। फलतः वे जनता की चीज लिख नहीं पा रहे हैं। मेरा विचार है कि यह सब खयाल छोड़ कर अब हम सीधे जनता-जनार्दन के पास चलें, उनके दिलों को छुयें, उनके दिमागों को झकझोरें, जो कुछ कहना है वह इस तरह कहें कि वे ठीक-ठीक समझें, फिर तो आपका अभिप्राय निष्फल जा ही कैसे सकता है? तीर यदि ठीक जगह पर आपने चलाई तो निशाना बीच में रुकेगा कहाँ? तब आपका प्रयत्न भी सफल माना जायगा। साहित्यिक बाजार मे उसकी कीमत किसी उपन्यास या कहानी से कम नहीं आँकी जायगी क्योंकि आपने मानव-मन और हृदय को

सही रास्ता दिखला दिया, उन्हें झकझोरते हुए पथ निर्देश कर दिया !

'दिल की गहराई से' यही है। इससे कुछ कम नहीं, कुछ ज्यादा नहीं। मैं तमाम साहित्यिकों से और जनता से—जनता से और समाज से—अत्यन्त नम्र निवेदन करूँगा कि एक बार वे इसे पढ़ें और यदि इनमें खामियाँ आई हैं तो मुझे जानने का मौका दें क्योंकि इस तरह की सामाजिक चीज प्रकाशित करने की योजना मेरी बहुत बड़ी है। खासकर अपने बड़े-गुरुजन साहित्यिकों की सम्मति भी जानने की इच्छा है कि इस पुस्तक को देख चुकने के बाद उनके क्या विचार हुए ?

डालटनगंज }

ज्योतिप्रकाश
७-४-५५

विषय-सूची



दिल की गहराई से

अपराध का दण्ड

रमेश अगर माँ-बाप का इकलौता बेटा है तो इस में हमें कोई एतराज नहीं। इस में भी हमें कोई एतराज नहीं कि उसे और बालकों से अधिक लाड़-प्यार मिलता है; और बालकों से वह अधिक सुखी रखा जाता है। जब दूसरे लड़के स्कूल गन्दे कपड़ों में जाते हैं तो वह साफ कपड़ों में जाता है। जब दूसरे लड़के स्कूल पैदल पहुँच जाया करते हैं तो रमेश अपने दो नौकरों के साथ फिटन में स्कूल पहुँचता है। जब दूसरे लड़के टिफिन में कुछ चना-चबेना ही फाँक लेते हैं तो रमेश के लिए पूड़ियाँ और मिठाइयाँ, मलाई और रबड़ी आती है। मैं मानता हूँ कि वह अमीर का बेटा है और व्यवस्था के हिसाब से उसे इस तरह सुखी रहने का हक है, तो वह रहे—बेशक रहे।

जिस वक्त रमेश की यह बात हम लिख रहे हैं, उस की उमर चौदह-पन्द्रह वर्ष की थी और अब उसकी उमर २१-२२ हो गई है। वह बढ़ कर जवान हो गया है, उसकी मूँछें भीग गई हैं और बाहुओं में बल आ गया है। अब वह एक हट्टा-कट्टा छैल-छबीला अमीर नौजवान रमेश हो गया है।

अमीर नौजवान रमेश से तो आप हमारा अभिप्राय समझ ही रहे होंगे हाँ आप का समझना बिलकुल ठीक है बचपन के लाड प्यार ने रमेश पर अपना रंग लाया है वह लाड-प्यार से शोख हो कर घाट पर घण्टों षोड़शियों से छेड़छाड़ करने में उस्ताद हो गया है। उसे आँखें लड़ाने का शौक हो गया है और अपनी भरी बाँहें कामिनियों को दिखलाने में गर्व का अनुभव करता है। वह अमीर घराने का एक बिगड़ा दिल जवान सच्चे अर्थों मे होता चला जा रहा है। ऐसा—जैसा आपने अपने मुहल्ले में नहीं तो अपने शहर में दो-चार तो देखे ही होंगे।

हाँ! तो यही रमेश हमारे मुहल्ले के रईस गिरधारी बाबू का साहबजादा है। यह बात नहीं कि उस की ये हरकतें उसके माता-पिता से छिपी हों या उसके बारे में वे कुछ न जान रहे हों! नहीं, वे रमेश को अच्छी तरह जानते हैं और वे न जानेंगे तो और कौन जानेगा? क्या उन्होंने ही रमेश को ऐसा हो जाने और बह जाने का मौका नहीं दिया? क्या उन्होंने ही रमेश को लाड़-प्यार से ऐसा सर पर चढ़ा कर नहीं रखा कि अब उसका जादू उन्हीं के सर पर चढ़ कर बोलने लगा? क्या रमेश ने कभी अपनी इन तमाम हरकतों के बावजूद अपने जननी-जनक से डाँट-फटकार खाई? मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मैं सिर्फ इतना ही जानता हूँ कि एक बार स्कूल में उसके शिक्षादाता ने उसके कान जोरों से ऐंठ दिये तो उनको रईस गिरधारी बाबू से पीछा छुड़ाते-छुड़ाते तबाही हो गई। रईस के लड़के से लगना साँप के मुँह में हाथ रखने से कम नहीं। आप शिक्षक हैं तो रहिए, आप पुजारी हैं तो सीधे पूजा कीजिए—आप कुछ भी हों, तो जो हैं, सो ही रहिए। रईस का लड़का सब के ऊपर है। वह आम है, इमली है—हाकिम है, हुक्काम है—उसका शासन है। वह रईस का बेटा है और पिता भी!

दो

तो हमारे रमेश से हमें कोई नफरत नहीं हम चाहते हैं कि हम उसकी तारीफ करें स्वभाव से ही हम किसी की शिकायत पसन्द नहीं करते मगर हम क्या करें ? वरदा शारदा के आगे अपनी लेखनी को गुनाहगार हम कैसे बना दें। सत्य छिपाने का पाप हमसे सहा नहीं जायगा। इसलिये रमेश से सहानुभूति रहते हुए भी हमें लिखने दो कि वह लड़का जवान होकर कुगामी हो गया। उसका सत्त्व और शक्ति बाजारों में और चौकों में बहने लगी, वह चरित्रहीन बन गया। इससे हमें ज्यादा कोई शिकायत नहीं। चरित्रहीन गरीब भी होते हैं—अमीर भी। शोहदागिरी सिर्फ अमीरों की ही विसात नहीं मगर रमेश चरित्रहीन होने के साथ-साथ आततायी भी हो गया। उसकी यह दुर्वृत्ति यहाँ तक बढ़ी कि वह अब खुले बाजार औरतों से छेड़खानी करने लगा। किशोरियाँ और युवतियाँ उसके लिये खिलौने-सी लगने लगीं क्योंकि उसके पास दौलत थी और दौलत के नशे में उसे स्त्री जाति की इज्जत भी रंगीन नजर आने लगी।

मगर ऐसे ही एक दिन इसी रंगीनी में वह एक अत्यन्त भीषण दुर्दान्त दुर्घटना कर बैठा। याने एक लड़की के पीछे अपने प्रतिद्वन्द्वी का खून कर बैठा। हाँ! सफेद खून—लाल खून—दफा ३०२ का खून! वह रईस का बेटा था। उसे इसका गरूर था। खून करना उसके लिये मजाक-सा लगा। पहले अपने दोस्तों के बीच बराबर बका करता था सो आज उसे कर ही दिखाया। हाँ! आज वह अपने से मुकाबला करने वाले एक दूसरे जवान का खून कर बैठा और तब इसके बाद उसको वह परिणाम देखने को मिला, जिसकी उम्मीद उसे हरगिज न थी। वह नहीं सोच सकता था कि उसकी भी गिरफ्तारी होगी। पुलिस उसके खूनी हाथों में भी वैसी ही बेड़ियाँ पहनाकर सीकचों के घरों में ठीक उसी तरह

ले जायगी, जिस तरह वह किसी हत्यारे, उचक्के, गुण्डे को खुले आम ले जाती है

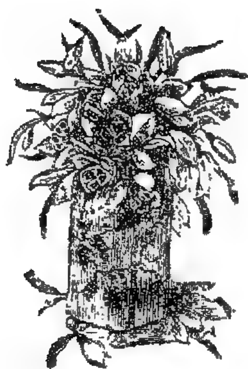
तो आज वही रमेश दफा ३०२ का मुजरिम बना अदालत के कठघरे में खड़ा है। बड़े-बड़े बैरिस्टर उसकी पैरवी में आये हैं। हजारों हजार उसके बचाने में पानी की तरह बहाये जा रहे हैं। रईस का बेटा है और उसके जीवन-मरण का प्रश्न है! रईस गिरधारी बाबू की इज्जत का प्रश्न है। क्या उनकी नाक कट जायगी? लेकिन इतना होने पर भी उनकी नाक कट ही गई। कोई उसे बचा न सका। दफा ३०२ कारगर हुआ और न्यायाधीश ने उसे फाँसी की सजा सुना ही दी। उसके बाद अपील हुई। इस कोर्ट से उस कोर्ट—सुप्रीम कोर्ट तक रईस गिरधारीलाल दौड़ कर भी दफा ३०२ को तोड़ नहीं सके और एक दिन याने ठीक ता० १३ जनवरी को रमेश की फाँसी का दिन मुकर्रर कर ही दिया गया।

१३ जनवरी १९५४! जेल के भीतर रमेश अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनता हुआ मौत की इन्तजारी कर रहा था। अब सिर्फ पाँच मिनट बाकी थे। तब रमेश रमेश न रहेगा। वह फिर इस दुनिया में अपनी रंगीनी दिखलाने को भी नहीं मिलेगा। बाहर उसके पिता मूर्ति बने तड़प रहे थे।

और उसके बाद ५ मिनट गुजरे। एक-दो-तीन! रमेश का सर धड़ से अलग हो गया और ठीक उसी क्षण उसकी जननी—उसकी माँ भी कुएँ में तड़प कर अपनी जान दे बैठी। दोनों की आत्माएँ एक साथ उड़ गईं!

रमेश को जाना था तो जाय। उसकी जननी—माँ ने क्या यही अपराध किया था कि रमेश को अपनी कोख से जन्म दिया था और जन्म देने का फल उसे इस तरह भोगना पड़ा कि अपने

लड़के के साथ ही वह भी चली गई एक मिनट यह देखने को भी इस दुनिया मे न ठहरी कि उसके लाल को अब लोग क्या कहेंगे ? हाय रमेश ! और तुम्हारी तरह अनेकों रमेश ! तुम क्यों नहीं अपनी माँ का मुँह देखते जो सिर्फ इसलिये इस दुनिया से सैकड़ों, हजारों, लाखों गुजर जाती हैं कि लोग न कहें कि वह रमेश की माँ थी ! और मैं कहता हूँ कि वह रमेश की माँ ही तो थी, नहीं तो अपने पुत्र के साथ दुनिया को त्याग कर चली कैसे गई !!



जीवन का सत्य

उस मुहल्ले में जब मैं पहले-पहल आया तो मुझ से कहा गया कि यह वही स्थान है जहाँ रायसाहब दीनदयाल रहते है। रायसाहब के बारे में मैं पहले भी सुन चुका था कि वे पक्के पुजारी हैं। भगवान के परम भक्त हैं और उनके यहाँ साधु-महात्माओं का आदर-सत्कार बराबर होता ही रहता है। मुझे यह सब सुन कर उन पर पहले ही से श्रद्धा थी। मैं उनके दर्शन भी करना चाहता था क्योंकि आज के जमाने में बड़े आदमियो में इस तरह की भक्ति कम ही देखने में आती है। नहीं तो कौन किसी को पूछता है? आज तो यह जमाना है कि आदमी अपने सगे-सम्बन्धियों को भी नहीं देखना चाहता—साधु-महात्माओ की बात तो छोड़ ही दीजिये। मेरे ही पड़ोस में एक स्टेट के राजा साहब हैं जिनके यहाँ बराबर नाच-दरबार का दौर-दौरा लगा ही रहता है मगर ज्यों ही किसी साधु-फकीर के चरण पहुँचे कि दूर ही से राजा साहब चिल्ला पड़ते हैं और अपने दरबानों से उन्हें निकलवा ही कर दम लेते हैं। निकालो जटावाले को! यह बात उनके इलाके में सुनी जाती है। उनके महल की यह आवाज टकरा कर उनके जंगलों में भी गूँज पड़ती है।

नतीजा यह था कि देवों की पुण्यभूमि जो हमारे राजा साहब के भाग्य से अब उनका राज्य कहा जाता है, वहाँ से जटावाले त्राहि माँग कर भाग गये हैं और अब उनके राज्य में दिन रात—उल्लू ही बोला करते हैं।

तो अब आप सीधे हमारी बात पर आइये। मैंने जो यह सुना कि रायसाहब दीनदयाल परम भक्त हैं तो मुझे भी उन पर बड़ी भक्ति हुई। मैं भी स्वभाव से ही शिव-भक्त, भगवान् से डरने वाला और देह से आत्मा और आत्मा से परमात्मा को बड़ा मानने वाले लोगों में से एक हूँ। इसके लिये मेरा भाई और मेरी स्त्री भी हँसती है कि कहाँ इस बीसवीं सदी के पचपनवें साल में यह दकियानूसी ख्याल! मगर मैं सोचता हूँ कि अगर भगवान् पुराने हो जायँगे तो मेरे ख्याल भी पुराने होंगे वरना यदि प्रभु चिर नवीन, चिर-शक्ति और प्रकाश के दीप हैं तो मेरी भक्ति मेरे ख्याल भी पुराने नहीं हो सकते। ये तो एटम बम से भी नये हैं—शक्तिशाली हैं क्योंकि ये उस गहनप्रदेश की आवाज हैं जिसे मैं सुनता हूँ और प्रभु देखता है। मुझ से प्रभु दूर नहीं और प्रभु वह जिसकी पूजा ये एटम बम वाले भी गिरजाघर में जाकर करते ही हैं!

तो रायसाहब दीनदयाल के बारे में जब मैंने सुना कि इसी मुहल्ले में रहते हैं तो मुझे बड़ा अच्छा लगा। मैंने उनसे भेंट करना चाहा। एक दिन इसी ख्याल से मैं उनकी ड्योढ़ी पर हाजिर हुआ। उस समय रायसाहब भीतर अपने कमरे में बैठे दुर्गा-सप्तशती का पाठ कर रहे थे। कुछ भीड़ भी लगी हुई थी। कुछ साधु-सन्त विराजमान थे, कुछ तान्त्रिक वगैरह भी वहाँ मौजूद थे। योगी-फकीर भी वहाँ निश्चय ही बैठे गाँजा खींच रहे थे। मैं भी वहाँ पहुँच गया। इन तरह-तरह के शिव-बारातियों

को देखकर मुझे कुछ दुःख नहीं हुआ। आखिर ये सब भी तो उस प्रभु के ही अंग हैं! मुझे पता चला कि इस तमाम आयोजन के पीछे दुःख की एक गहरी खाई भी दौड़ रही है। वह है रायसाहब का निःसन्तान होना! रायसाहब के घर में सिर्फ इसी एक बात की बड़ी कमी है। इसलिये बराबर इन दिनों ये आयोजन चल रहे हैं। दुर्गा माँ का पाठ चल रहा है और योगी-तान्त्रिकों का ख्याल है कि इस आयोजन से इस बार रायसाहब का मनोरथ जरूर पूर्ण होगा। रायसाहब को पुत्ररत्न की प्राप्ति इस बार अवश्य होगी।

ईश्वर-भक्त होते हुए भी मुझे इस तरह के आडम्बर अधिक पसन्द नहीं। फिर भी समय और विवशता का तकाजा समझकर रायसाहब का यह सब करना मुझे बुरा नहीं लगा। मैंने भी अपने मन से कहा कि भगवान्! रायसाहब की इच्छा अवश्य पूरी करें। भगवान् के भक्त को भगवान् न देंगे तो और कौन देगा?

दुर्गा-सप्तशती का पाठ समाप्त होते मुझे पाँचवें ही महीने में सुनने में आया कि रायसाहब के घर में शीघ्र एक सूरज उदय होने वाला है। मुझे यह जान कर बड़ी खुशी हुई—चलो आखिर रायसाहब के यहाँ नन्हाँ मुन्ना तो खेलेगा और सबों की लाज रखते हुए उस परमपिता परमात्मा की कृपा से ठीक नवें महीने रायसाहब के घर में प्रभु का छोटा-सा रूप—एक सलोना बालक पैदा हुआ। तो रायसाहब इतने गद्‌गद हुए मानो उन्हें आस्मान के सितारे मिल गये। मानो उन्हें स्वर्ग-कुसुम मिल गया—मानो उन्हें इन्द्र-राज्यका सुख मिल गया!! मानो उन्हें समुद्र-मंथन का अमृत-कुंभ मिल गया! उन्हें सब कुछ मिल गया! रायसाहब के यहाँ गाजे—बाजे—शहनाई—सब बजे। शहनाइयों के बीच राय-साहब और उनकी स्वामिनी ने मनौती मानी कि हम 'पुरी' जाकर

लड़के का मुण्डन करेंगे। पुरी के कुण्ड में स्नान एवं लड़के का मुण्डन होगा। यह सब विचार कर रायसाहब अपनी गृहिणी के साथ कुछ दिनों के बाद पुरी चले भी गये। वहाँ पूजा का सब आयोजन कर रात को उन्होंने अपनी अर्धाङ्गिनी और लड़के के साथ कुण्ड के किनारे ही सोने का निश्चय किया। थके हुए थे ही—सोते ही तीनों को गहरी नींद आ गई। बेखबर सब सो रहे और भगवान् की लीला तो देखो! न जाने कब, कैसे, किस तरह चुपके से लुढ़क कर वह अबोध बालक कुण्ड में जा पड़ा और दो-चार-दस बबूलों के साथ आधी रात के समय उस जल-कुण्ड में चिर विलीन हो गया। एक आवाज तक न उठी। मौन से आया था और मौन में ही समा गया!

सुबह को फटते कलेजों के साथ और पागल आँखों से उस निर्बोध बालक के जननी-जनक रायसाहब और उनकी स्त्री ने देखा कि उनका वह अबोध शिशु उपल कर सूरज की प्रथम किरणों के साथ मानो आँखमिचौली खेल रहा है। देह मर गई थी मगर आत्मा विभोर होकर मानो प्रकृति में समा रही थी।

रायसाहब और उनकी गृहिणी पत्थरों पर पटकाई, रोई, सर फाड़ा, छाती पीटा और फिर बेहोश हो गई। आज देनेवाले ने देकर भी उनसे छीन लिया था! किंचन-अकिंचन का भेद मिटाकर फिर से सब सम कर दिया था। कहाँ तो सारी दुनिया की दौलत बख्श दी थी मगर बात की बात में फिर उन्हें गरीब-मुफलिस कर दिया था। महलों का सपना टूटकर झोपड़ा तक नहीं रह गया था।

इस कहानी का अन्त अब मैं इस तरह करता हूँ कि देनेवाला दयालु ही है। उसकी दया तो यहाँ-वहाँ-कहाँ नहीं है? सिर्फ हमारा यह नजर भेद है कि यदि हमें हमारे घर में मिला तब

तो सब ठीक, नहीं तो ईश्वर बड़ा क्रूर, निष्ठुर हो गया। इसी बात को हम इस तरह क्यों न सोचें कि सब कुछ तो उसी का है। चाहे हमें जो दे और चाहे हमें जहाँ रखे! सब ठौर तो उसी का है!! कौन कहता है कि रायसाहब फिर निःसन्तान हो गये? यह गलत है—बिल्कुल गलत। रायसाहब का लड़का जीवन-मरण का सत्यभेद दिखलाता हुआ चला गया। अब हम समझें या न समझें!!!



यह मेरी माँ है!

मैं बड़ा बाँका हूँ—छैल-छबीला हूँ । मैं जवान हूँ । मेरी उमर २३-२४ की है । मुझमें जवानियाँ लहरें ले रही हैं । मुझमें उमंगें उठती हैं और टकराती हैं, टकराती हैं और उठती हैं । मैं वह इन्सान हूँ जिसका दिल प्यार करने को तड़पता है, जिसकी नसें मोहब्बत के मोहिनी तराने सुनने को तनती हैं । मगर फिर भी मेरा मन कहता है कि अगर तुम्हारी बाजुओं में इतनी ही शक्ति है तो तुम इन्सान को भाई समझ कर मुहब्बत क्यों नहीं करते ? औरतों को बहन समझकर मुहब्बत क्यों नहीं करते ? सच्ची मुहब्बत और है ही क्या ? भगवान कृष्णने प्रेम का सच्चा ही रूप दिखलाया था । यह तो इन्सान की आँख है कि जिसने राधा को भी अनुराधा समझ लिया । हालाँ कि वह यशोदा की तरह ही एक नारी-रूप थी—यशोदा से कम पवित्र नहीं ।

खैर, मैं बाँका हूँ । मैंने एक रमणी से प्रेम किया । उसने भी मुझे प्यार दिया । मैंने समझा वह सोना है—हीरा है—माणिक है—मोती है । उसने भी मुझे समझाया कि मैं सोना-चाँदी, जमीं-आस्मान सब कुछ हूँ । मैंने समझा वह चन्दा है, उसने समझा मैं सूरज हूँ ।

यह प्रेम का नशा मुझे वहाँ तक पहुँचा आया जहाँ मैं एक दिन समझने लगा कि दुनिया में अगर मेरा कोई है तो वह यही

है। वह है, तो दुनिया है—वह नहीं तो दुनिया नहीं। वह दीप है, नहीं तो दुनिया अंधकार है।

एक दिन उसने पूछा—मुझे प्यार करते हो ?

तो मैंने कहा—हाँ !

उसने पूछा—कितना ?

तो मैंने उत्तर दिया—प्राणों से बढ़कर !

उसने पूछा—मेरे लिये क्या कर सकते हो ?

तो मैंने कहा—प्राण दे सकता हूँ !

बात वहाँ पर तय हुई कि जब परीक्षा आवेगी तो हम दोनों एक दूसरे को परख लेंगे। इसके बाद यह हुआ कि हम दोनों के प्यार के बीच एक दिन हमारी माँ आ टपकीं। हम दोनों एक जगह पर बैठे हुए थे, सारी दुनिया को भूले हुए। माँ का वहाँ पहुँचना हम दोनों को बहुत बुरा लगा। उसकी सूरत वहाँ क्या थी गोया दुश्मन की छाया खड़ी थी। मैं तुरत ही उठा और बगैर आगे-पीछे देखे-सुने माँ की गर्दन में हाथ दिया और इस जोर से पटका कि उसके दाँत टूट गये, मुँह फूट गया और सर घायल हो गया।

मगर वाह रे मेरी जन्मदायिनी ! तुमने एक उफ़ तक न किया। न रोई, न चिल्लाई। सिर्फ धरती पर धड़ाक से गिर पड़ी तो मैंने अपनी प्रेयसी से कहा—नखड़ा करती है, अभी हुआ क्या है ? आगे तो इसकी दुर्गति होनी है। यह बात बीत गई।

उसके बाद धीरे-धीरे मेरा पैसा घट गया और मैं तकलीफ में रहने लगा। तो एक दिन मेरी लैला—मेरी प्रेयसी जो मुझे लैला और शीरी से बढ़कर प्यारी लगती थी—धड़ाम से आई और मुझे खुले आम धता बताते हुए मेरे ही सामने एक दूसरे को प्यार करने लगी। मैं खून का घूँट पीकर रह गया। अपनी किस्मत को

बहुत रोया पर इससे मेरा दिल शान्त न हुआ तो मैं उसके नये चाहने वाले के पास लड़ाई के ख्याल से गया लेकिन मेरी शक्ति मुझे छोड़ चुकी थी। मैं अभागा उससे लड़ भी नहीं सका। उसने मुझे इस जोर से पटका कि मेरी हड्डी तक टूट गई और कमर भी बेकाम हो गई। मुझे टाँग कर घर पहुँचाया गया। मैं बेहोश था। मगर मैं जब होश में आया तो देखता हूँ कि मेरी माँ मेरे ही मारे हुए अपने घायल पटियों को अपने जख्मों से खोलकर मेरे जख्मों में बाँध रही है और अपने बूढ़े बालों को माथे से नोच कर सलाई के जरिये राख बनाकर मेरे जख्मों में साट रही है! तब मेरे तड़पते दिल ने उसी क्षण कहा—यह मेरी लैला नहीं है, यह मेरी माँ है!!



जीवन की पहेली

मेरे घर में एक बच्चा है। वह रोज सुबह उठता है तो उठते ही सूरज की ओर देखने लगता है। उसकी लाल-लाल किरणें देखता है और उन्हें देखकर हाथ जोड़ता है। कभी हँसता है, कभी मुस्कराता है। कभी सूरज की किरणें सामने जल पर नाचते देख कर वह भी नाचने लगता है। वह शिशु, प्रकृति के साथ मानो एक हो उठता है।

उसके बाद धूप बीतने पर जो मौसिम आती है उसे वह समझता है कि बरसात है। क्योंकि बरसात भी उसे बड़ी प्यारी लगती है। बरसात की बूँदाबूँदी में आकाश-जल के साथ वह भी फुदकता-कूदता है। सामने खेत-अहरा में जाकर ठुमक-ठुमक कर किसानों के जीवन के साथ हिलमिल कर कुछ-कुछ अंडबंड गुनगुनाता है और मैं सुनता हूँ तो वह मुझे बड़ा अच्छा लगता है। मैं कहता हूँ कि यही प्रभु-गान है।

बरसात के बाद जाड़ा आता है। फूल खिलते हैं। कलियाँ हँसती हैं। सूरज फिर चमकता है और चाँद चाँदनी में लोट-पोट होने लगता है तो मेरा बच्चा भी बड़ा खुश होता है और फिर अस्फुट शब्दों में कुछ कहता है तो मैं सोचता हूँ कि यह प्रकृति-गान है।

इसी तरह मेरा बच्चा बड़ा होता है। बच्चा से किशोर, किशोर से जवान, जवान से फिर बूढ़ा होगा। मैं अपने बच्चे को बहुत प्यार करता हूँ। मुझे उससे बड़ी-बड़ी उम्मीदें हैं। मैं अपने बच्चे में अपना ही पूरा भविष्य देख रहा हूँ। अपने देश का भविष्य देख रहा हूँ, सारी दुनिया का भविष्य देख रहा हूँ। मै अपने बच्चे में प्रभु को देख रहा हूँ। मैं उसको बहुत प्यार करता हूँ। ऐसा लगता है जैसे परमेश्वर को ही प्यार कर रहा होऊँ! उसके हँसने-गाने सब में प्रभु का ही रूप निहारने लगता हूँ!!

उसकी हँसी मुझे बहुत पवित्र लगती है। उसके गाने मुझे चिन्तामुक्त सुनाई पड़ते हैं। धूप में खेलना, बरसात में नाचना, जाड़ों में तितलियाँ पकड़ना, सब में मैं प्रभु का परम-पवित्र निष्पाप, निष्कलंक, शुद्ध रूप, शुद्ध लीला देखता हूँ और उसकी तुलना मैं सूरज से और चाँद से, फूल से और कली से, धूप से और अमृत से करता हूँ। मुझे लगता है कि जीवन इससे बढ़ कर और कोई नहीं। प्रभु की शक्ति का माप-तौल भी देखना हो तो यहीं देखें। मनुष्य जो दुनिया से इतना प्यार करता है तो वह भी यही है। प्रभु को महान् मानता है तो उसकी सब से महान् सृष्टि भी यही है जिसका न वर्णन है न तुलना ही।

मुझे मेरा बच्चा बहुत अच्छा लगता है। इसलिये दुनिया भी मुझे बहुत अच्छी लगती है। धूप-दीप, चाँद-सूरज सब अच्छे लगते हैं। भगवान् भी सब से अच्छे लगते हैं क्योंकि उन्होंने मुझे मेरा बच्चा दिया, चाँद दिया, सूरज दिया, सब कुछ दिया। मैं अपने बच्चे में प्रभु का सत्य रूप देखता हूँ।

इसके बाद मेरा बच्चा जवान होता है। अब वह सूर्य की किरणों से नहीं खेलता। अब वह सूरज और चाँद को नहीं

देखता अब बरसात और जाड़ों से अपना दिल नहीं बहलाता। अब वह थियेटर और नाच देखता है तो उसका दिल बहलता है। स्त्रियों की अदायें देखता है तो उसे मुस्कान और हँसी आती है। दूसरे से छल-कपट, धोखा-दगा कर पैसा हड़पता है तो उसे दिल से खुशी होती है और समझता है कि उसका जीवन बड़ा सुखी है क्योंकि वह हर तरह से सफल हो रहा है। उसका जीवन ऐसा ही रहे। यही उसका ख्याल रहता है। अब कहाँ गये उसके प्रभु और कहाँ गईं वे पवित्र लीलायें? उसके इस बदले हुए जीवन में अब वे कहीं देखने को नहीं मिलतीं?

तो मैं समझता हूँ कि किस तरह एक शराबी को सुरामत्त देख कर सज्जनगण राह से कट कर किनारे से ही निकल जाते हैं, ठीक उसी प्रकार इस जीवन के मिथ्या बाजार से सच्ची हँसी-खुशी, धूप और छाया, फूल और कलियाँ, जाड़े और बरसात सभी इस तरह निकल जाते हैं मानो इस पाप-पंकिल रूप और चमक के दौर-दौरे में उनकी सृष्टि का लोप हो रहा हो! गला घुट रहा हो!! और दम्भी छलिया इन्सान चमक-दमक की इस दुनिया की बाजार में फँस कर इस तरह उस स्वर्गिक जगत को ठुकराता चलता है जो इसी जगत में उसी की दुनिया के साथ साथ चल रही है। जहाँ मिथ्या है उसी से परे सत्य भी है। पाप और पुण्य में एक बहुत ही पतली सीमा है। झूठे और सच्चे जीवन में भी एक पतली ही लकीर दौड़ रही है। जीवन को समझ कर देखो तो!



गाँव का हरिजन

आज १९५५ साल में भी हमें लिखना पड़ता है कि हर शहर और देहात में सैकड़ों-हजारों घर ऐसे भी हैं जिन्हें चमारों की बस्ती या मेहतरों की बस्ती कहा जाता है। उन्हें अछूत समझा जाता है। लाख गांधी जी चिल्लाते रहे, लाख नेहरू जी समझाते रहे। यह जो संस्कार हिन्दुओं के दिलों में हजारों साल से घर कर गया है वह थोड़े ही बीस-पचीस बरसों में टूट जायेगा। यदि संस्कार बनने में हजार बरस लगे तो मिटने में भी तो कम-से-कम हजार बरस लगने ही चाहिएँ। नहीं तो हिन्दू जाति किस काम की? अरे भाई! क्यों नहीं तुम सोचते कि वेद-युग में जाति से कोई ब्राह्मण-क्षत्रिय या शूद्र नहीं होते थे, होते थे तो कर्म से ही। जो कोई चाहता विद्या-अभ्यास कर ब्राह्मण-वृत्ति कर सकता था। तलवार उठा कर क्षत्रिय बन सकता था। तो धीरे-धीरे कर्म तो लुप्त हो गया। आर्य कर्महीन हो कर वृक्ष के ठूँठ की तरह अब विभिन्न जाति बना बैठे। याने जिसने आत्माभिमान से तलवार उठाई थी वह तो क्षत्रिय बन बैठा और जिसने सेवा को प्राणों से बढ़ कर समझा [जिसका उपदेश और प्रेरणा वेदों ने दी] वे लोग अब शूद्र करार दिये गये। शूद्र! अछूत! वाह, क्या इन्साफ है? कहाँ तो सेवा करने वालों को सर्वोच्च स्थान मिलना चाहिये था, कहाँ वे शूद्र, अछूत बन गये। खैर! सीधे अब कहानी पर आइये।

जातिवाद का यह कोढ आज हिन्दुस्तान के कोने-कोने में फैल गया है आप अगर वैश्य हैं तो आप निश्चय ही ब्राह्मणों और राजपूतों से छोटे हुए। आप चाहे जितने ऊँचे दर्जे के इन्सान हो, इस बात की कोई बहस नहीं। आप यदि ब्राह्मण हों तो दूसरे ब्राह्मण आप की कद्र करेंगे। आप यदि क्षत्रिय हुए तो पीठ पीछे ब्राह्मण आपकी निन्दा करेंगे। आप वैश्य होकर क्षत्रिय से मुकाबला की बात करेंगे तो क्षत्रिय एक हो जायेंगे क्योंकि जाति का सवाल है। हरिजनों, शूद्रों की तो बात ही छोड़ दीजिये। फूटबॉल की हालत है। जिसने चाहा दो ठोकरें लगा दीं। क्या बिहार, क्या बंगाल, क्या यू० पी० क्या सी० पी०। सभी एक ही नाव के मुसाफिर हैं। एक ही घाट के स्नातक हैं। भारत से जातिवाद उठाने की चर्चा लौह भुजाओं का ही काम है। अगर आप में बल है तब तो यह पचड़ा उठाइये, नहीं तो हिन्दू जाति को—जैसी है वैसी ही छोड़ दीजिये। अफीम का नशा है।

हमारी कहानी हरिया से शुरू होती है। हरिया, हरिया की बेटी और बेटी की माँ सभी रामपुर ग्राम में एक किनारे रहते थे। जूते वगैरह ग्रामवासियोंके सी कर या मरम्मत कर गुजर करते थे। वे लोग इस गाँव में करीब तीसों बरस से थे। गाँव के लोग चाहे उन्हें गाली दें, मारें, धिक्कारें, सब सहते हुए भी अपनी जन्मभूमि समझ कर वे वहीं टिके हुए थे। कभी-कभी बात-बात की दौरान में हरिया कह भी देता था कि लोग चाहे मेरी छाया से भी दूर भागें लेकिन मेरी लाश इसी गाँव से निकलेगी। रामपुर की मिट्टी क्या मेरी मिट्टी नहीं है? तो ऐसा स्नेह भरा दिल रखने वाला हरिया ही है जिसकी कहानी हम आज आप को सुनाने चले हैं। उसका स्वभाव भी ऐसा कि मोम मात हो जाय। अगर

गाँव का कोई सामूहिक कार्य करना पड़े तो हरिया लड़ने भिड़ने, जमीन खोदने से लेकर गाँव के नाम पर तलवार भी चलाने को तैयार मिलेगा। एक बार महाबीरी झंडा लेकर दो गाँवों में झगड़ा हो गया कि झंडा कहाँ रक्खा जाय तो हरिया अपने गाँव के लोगों की तरफ से ऐसा लड़ा—ऐसा लड़ा कि उसका सर फूट गया। सर से खून की धार चल निकली।

इसी हरिया की बेटी का नाम दुलरिया है। दुलरिया की उम्र सत्रह-अठारह की है। शादी हो चुकी है। उसका पति पास ही दस कोस के फासले पर रहता है। बहुधा दुलरिया के घर पर ही आया करता है। दुलरिया को अपने माता-पिता से इतना मोह है कि वह अपने पति के घर जाना ही नहीं चाहती। दुलरिया रामपुर की है। रामपुर दुलरिया का है। जैसा पिता वैसी बेटी!

दुलरिया का स्वभाव कड़ा भी है, नरम भी है। रूप खूबसूरत भी है, बदसूरत भी। खूबसूरत इस नजर में कि यदि आप उसे माँ-बहन समझें और उसी निगाह से देखें। बदसूरत इस ख्याल से कि बुरी निगाह से यदि आप ने उसे देखा तो वह नागिन है, बाघिन है! चाहे फिर वह आप हों या हम हों। आप कहेंगे कि चरित्र और फिर एक अछूत की बेटी को? तब मैं कहूँगा कि चरित्र कुछ ऊँची जातियों की बपौती नहीं है। जो उनके पास यदि सोना-चाँदी है और तिजोरी है तो चरित्र को पकड़ कर बन्द कर रख देंगे। यदि गरीब है तो चरित्र कहाँ से? क्योंकि उसका चरित्र आप खरीद सकते हैं। अरे समाज के कोढ़ी! कैसे हम तुम्हें समझा दें कि घर में जिसे हम समझते हैं कि हमारी माँ-बहनें ठीक हैं तो मुमकिन है कि हम गफलत के बुरी तरह शिकार हो रहे हों! हमारी इज्जत भी परदे के पीछे बिक रही हो!

उस पर भी डाका पड रहा हो। उस पैमाने का डाका, जिसका मुकाबला क्या कोई गरीब करेगा! मगर नजर-नजर की बात है। हम अमीर हैं तो हमारी इज्जत ठीक है। अगर हम गरीब हैं तो हमारी बहू-बेटियाँ ठीक रह ही कैसे सकती हैं? उसके खरीददार पैसे से बहुत हो सकते हैं न?

खैर! मैं ऐसा नहीं मानता। मैंने अपनी आँखों के सामने ही हरिया की बेटी को देखा। क्या कुन्दन का खरापन भी उसका मुकाबला करेगा? लेकिन वही दुलरिया जब गाँव के भीतर जाती है तो लोग तानाकशी करने से बाज नहीं आते। कोई आँखें दिखलाता है। कोई घास छिलवाता है। कोई गाय की सानी-पानी करवाता है और मैं कहता हूँ कि दुलरिया गाँव-घर के लिये यह सब सेवा करती तो है मगर उसकी सेवाओं का मूल्य गाँव वालों की निगाह में कुछ भी नहीं। यदि रहता तो शादी-ब्याह के दिन घर से दूर वह रक्खी नहीं जाती। किसी मर-मुकदमा में जाने से पहले गाँव वाले उसकी छाया को अपने से हटवा नहीं देते। लड़के परीक्षा में भी जाते तो दुलरिया उस समय दूर ही रहती, छाया पड़ी कि काम बिगड़ा। वह अछूत जो थी। आप इसे मानें, यदि नहीं मानने का जी चाहता है तो मेरे साथ रामपुर चल कर खुद अपनी आँखों देख लीजिये।

उस गाँव में ऊँचे घराने के एक राय जी भी थे। उनकी लड़की को लोग दूर देश से देखने को आये। बड़ी शोहरत थी। नाम था। रायसाहब का दिल कहता था कि उनकी लड़की की सगाई अवश्य पक्की हो जायेगी। लेकिन सगाई पक्की न हो सकी। तो गाँव वालों ने कहा कि दुलरिया की छाया मेहमानों पर पड़ी थी। वह रास्ते में खड़ी थी। तब दुलरिया को बड़ी मार पड़ी। ऐसी कि उसने खाट धर लिया। उसके माँ-बाप भी तड़प उठे। फिर

भी दुलरिया उसकी माँ और बाप रामपुर नहीं छोडे गे। कौन माँ का लाल है जो उन्हें रामपुर छुड़ा दे ? जो ऐसा कहे भी वह उनका दुश्मन! एक बार एक क्रिस्तान पादड़ी ने बड़ी भारी लालच उन्हें दी कि क्रिस्तान बन जाओ तो तुम्हें अफसर तक बना देंगे। फिर ये गाँव वाले तुम्हारे जूते सहलायेंगे, तो दुलरिया के बाप हरिया ने उस पादड़ी को ऐसा पीटा कि पीटते-पीटते गाँव से ही भगा दिया।

मगर रामपुर में राम जाने किसका शाप पड़ा कि बड़े जोरों की महामारी फैली। गला फूलने का रोग! लोगों के गले फूलते थे और लोग मर जाते थे। इस महामारी में गाँव के दर्जनों लोग मरने लगे। बच्चे, बूढ़े सभी बड़े बेहाल हो गये। बहुत से तो गाँव छोड़ कर भाग गये। बड़े कहे जानेवाले लोगों की टोली की टोली गाँव से हट कर दूर मैदानों में झोपड़े डालने लगी लेकिन बच गये तो कुछ अशक्त-गरीब-असहाय लोग। जो रहेंगे तो गाँव में ही। दुलरिया को यह बड़ा दुःखकर मालूम पड़ा। क्या उसका गाँव वीरान हो जायेगा? उजड़ जायेगा? सभी लोग भाग जायेंगे? नहीं-नहीं? तब उसने अपना आँचल बाँधा। पास के बरगद के हनुमान जी की पूजा की, मनौती मानी और एक बार जय बजरंगबली, जय महादेव का नारा उच्चारते हुए गाँव से करीब ही रहने वाले फकीर वैद्य के यहाँ पहुँची। वह फकीर क्या थे जिसे लोग पागल समझते थे। मगर दुलरिया ने उस फकीर की बलैयाँ लीं और फकीर ने भी उस शुद्ध आत्मा को चन्द जड़ी-बूटियाँ ऐसी थमा दीं कि दुलरिया उन्हें लेकर गाँव में पहुँची और एक-एक घर में जाकर बाँटने लगी। और वाह रे फकीर! तूने कहाँ का जादू सीखा था कि तेरी जड़ी लगते ही घर पर घर अच्छे होने लगे। मरते को

जिन्दगी मिलने लगी। खरीदा कफन वापस होने लगा। क्या दुलरिया की तरह ही तुझे भी गाँव वालोंने ठुकरा दिया था? यदि तुम सिर्फ साधू बनने का चोंगा चढ़ा, ढोंग करते तो मुझे तुमसे कोई सहानुभूति नहीं रहती, क्योंकि तुम ढोंगी कहे जाते लेकिन तुम्हारा यह गुण सुन कर तो मैं भी तुम्हें प्रणाम करता हूँ कि कहीं गाँव वालों ने पैन्ट पहनने वालों को ही दुनिया के सब से बड़े ज्ञानी समझ कर तुम वृक्ष के तले वेद-पुराण बनानेवाले या आयुर्वेद साधने वालों को गँवार ही तो नहीं करार दिया था?

खैर! जो कुछ हो, तुम्हारी दवा और दुलरिया की दुआ ने बड़ा काम किया। वीरान घर आबाद होने लगे। दुलरिया जहाँ कहीं पहुँचती मानो देवी पहुँच जाती। देखते-ही-देखते लोग चंगे होने लगे। वह जड़ी और दुलरिया के हाथ क्या थे मानो प्रभु के वरदान थे!

गाँव फिर आबाद हो गया। मगर वीरान को आबाद करने वाले ने एक बहुत बड़ी वीरानी फिर पैदा कर दी। जो हाथ उठा कर सबों को यश और जीवन दे रहा था, एक दिन उन्हीं हाथों वाला वह शरीर खुद ही उस रोग का शिकार हो गया और देखते-ही-देखते दुलरिया की आँखें पथरा गईं। दुलरिया मर गई! दुलरिया गुजर गई!!

लेकिन गाँव तब फिर आबाद हो गया था। बड़े जाति वाले लोग फिर गाँवमें वापस आ गये थे और हरिया भी गाँव के किनारे अपने उसी घर में रहता था!

—:※:—

हमारे ये जीवित देवता !

आइये, हम आपको इन लोगों से परिचय करावें। यह मधुपुर गाँव है। जिला राँची पड़ता है। हमारे गाँव में सब से पहले पूछ-ताछ किये जाने वाले ये साहू जी हैं। बृन्दा साहू। बृन्दा साहू सूद लगाने का कारबार करते हैं। ऐसे और भी खेती-बारी वगैरह होता है मगर सूद ही मुख्य व्यवसाय है। सूद रुपये में दो आने! आये थे तो बहुत गरीब थे। लेकिन बनिया की अकल पकड़ कर बहुत जल्दी ही अमीर हो गये। सूद ने चक्रवर्ती राजा की तरह गाँव पर ऐसी विजय पाई कि चाहे आप खेती करते-करते थक जायँ, फसल बृन्दा साहू के यहाँ पहुँच ही जायगी, आप कहीं से कुछ कमा कर लायें, रुपया साहू जी की तिजोरी में किसी न किसी कदर चला ही जायगा। आप की लड़की ब्याहनी है तो साहू जी के पास जाइये। रुपये मिलेंगे लेकिन फिर सारी जिन्दगी आप साहू जी को याद भी रखेंगे। यदि आपको कोई मुकदमा लड़ना हो तो साहू जी के रुपये हाजिर हैं। लेकिन साहू जी रुपये के साथ-साथ वकील भी ठीक करा सकते हैं! ऐसे वकील जो सारी जिन्दगी लड़ा-लड़ाकर नहीं मार डालें तो कहियेगा। यदि आप को अपने पिता जी की श्राद्ध करनी हो तो साहू जी इसके लिये भी तैयार हैं। साहू जी सनातन गजानन हैं जिसकी थाह ईश्वर को भी शायद ही लगे। ये ही बृन्दा साहू गाँव के साहूकार हैं

जिनके यहाँ छल-कपट, मर-मुकदमा, जेल फाँसी से लेकर धर्म कर्म, ध्यान पाठ, कीर्तन-संकीर्तन सब कुछ चलता रहता है.

अब आप गाँव में आने वाले कुछ लीडरों के साथ चलिये। ये सोशलिस्ट हैं, ये कम्युनिस्ट हैं, ये जनवादी हैं, ये संघी हैं, ये लीडर हैं। ये गाँव में आये तो साथ-साथ इनके चेले भी आये। कहीं पर पड़ाव पड़ा। ठहरे और सभा का आयोजन हुआ। दस-पाँच गाँवों में ढिंढोरा पीटे गये। गाँव के साहू जी सभापति हुए और सभा शुरू हुई। लीडर जी ने फर्माया कि हमारी सरकार ने ही गाँव की यह हालत कर दी। स्वराज्य के पहले इस सरकार ने वादा किया था कि यहाँ रामराज्य हो जायेगा। लोग भूख से नहीं मरेंगे। नंगे नहीं रहेंगे। शिक्षा-विहीन नहीं रहेंगे। लेकिन आपको खूब निराशा हुई। आप हमें वोट दें। हम आपके नेता! हमारे नेता आप के परम नेता! हम ही आप के रहनुमा हैं। मानो इन लीडर जी के हाथ में अलादीन का चिराग है। मानो ये अचानक स्वर्ग लाकर खड़ा कर देंगे। मानो इनके पास जनता की तकदीरों की करामाती कुंजी है। उसके बाद ये लीडर महाशय चन्दा के लिये हाथ फैलाते हैं। भाइयो! चन्दा दो और खुलकर। चन्दा दो तो पार्टी मजबूत रहेगी, तुम मजबूत रहोगे। यह सब जब शेष हुआ तब लीडर जी गाँव से वापस आये। वे वापस आये तो तीसरे दिन दूसरे लीडर पहुँचे, पाँचवें दिन एक और आये। इस तरह लीडर और जनता, जनता और लीडर का आना जाना लगा रहा! कौन किसका अन्नदाता, भाग्यविधाता और रहनुमा है हम को यह कभी पता ही नहीं चला।

ये गाँव के वैद्य और ओझा हैं। वैद्य और ओझा एक ही साथ। जी हाँ! जहाँ ये वैदकी में चरक से शुरू कर त्रियंबक शास्त्री की बात करेंगे, वहाँ ये कारू-कमच्छा से लेकर गुजरात की

जादूगरनियों का भी हाल बतायेंगे। मगर सब इनकी सुनी-सुनाई ही बातें हैं। देखी इन्होंने एक भी नहीं हैं। न वैदक की किताब ही पढ़ी है। सिर्फ कुछ श्लोक रट लिये हैं। लेकिन गाँव में रात्रि का जुटान इन्हीं के चबूतरे पर होता है। जहाँ घर-गिरस्ती से लेकर वेदज्ञान, पंच-परमेश्वर सबकी आलोचना-विवेचना होती है। यदि राम की बहू भागी तो क्यों भागी? यदि भाई ने भाई का खून कर ही दिया तो गवाह मिलेंगे या नहीं? सब की मीमांसा-व्याख्या यहीं होती है और गाँव के हमारे ये ओझा सबों की मीमांसा इतनी सुन्दर कर सकते हैं कि मानो मनु महाराज का फैसला हो! गाँव वालों पर इनका प्रभाव भी बहुत है। आप बीमार हैं, इनके पास आपको आना होगा। आप मुकदमा लड़ना चाहते हैं तो शौक से लड़िये लेकिन इनसे पूछ कर। आप गवाह जुटाना चाहते हैं तो ओझा जी आप की मदद करेंगे। आप खून छिपाना चाहते हैं तो ओझा आप को इसके लिये भी तैयार मिलेंगे। जब तक ओझा आपके यहाँ हैं, आपका गाँव कुशल है। ओझा जी बिगड़े कि गाँव में तबाही होगी। इस भय के डंडे के साथ ओझा जी मधुपुर गाँव में विराजमान हैं। ये गाँव के तीसरे जीवित देवता हैं।

और अब आइये, गाँव की रीढ़ किसान से मिलिये। वह एक साथ ही पढ़ भी है और अपढ़ भी। चतुर भी है और गँवार भी। भोला-भाला भी है, उग्र भी। सीधा भी है, टेढ़ा भी। सन्तोषी है तो विद्रोही भी। दुखी है मगर उतना ही सुखी भी। यह गाँव का किसान है। यह वह स्लेट है जिस पर आप चाहें तो राम भी लिख सकते हैं रहीम भी। यह संस्कार से बँधा हुआ इन्सानी कठपुतला है। जो भगवान् से डरता है मगर जमींदार से विद्रोह भी कर सकता है। आँख के आगे लड़ना जानता है। आँख के पीछे क्या हो रहा है इससे इसे कोई वास्ता नहीं। जो धर्म-पुराण

कहेंगे उसे यह मान लेगा आँख के सामने आप जुल्म न कर सकेंगे। ये सहेंगे तो चोट भी करेंगे। आप इनके सामने इनके खेतों पर अब आँखें न गड़ायें नहीं तो आँखें निकाली भी जा सकती हैं। इनका जो हक है सो इन्हें दे दें, फिर आप लूटें या कूटें। मगर इतना तो जान ही लेना चाहिये कि ये अब तक सिर्फ संस्कार के पुतले रहे थे। इसलिये इनके जीवन में इतना विरोधाभास है। एक साथ ही गरमी और बरषा है, शीत और धूप है और इन चारों का संगम हमारा यह किसान है! साहु जी और लीडर, ओझा और किसान! जी हाँ, ये ही चारों हमारे गाँव के जीवित देवता हैं!!



गंगाराम

जब मैं इस मुहल्ले में पहले-पहल आया तो पता लगाने लगा कि इस मुहल्ले में कौन-कौन शरीफ हैं और किन लोगों से हमें दोस्ती करनी चाहिये। मुझे बहुत से नाम गिनाये गये, सज्जनों के और दुर्जनों के। दुर्जनों के बारे में मुझसे कहा गया कि आप बाल-बच्चेदार आदमी हैं, इनसे बच कर रहियेगा। ऐसे ही दुर्जनों में एक गंगाराम बतलाया गया। गंगाराम के बारे में जो कुछ मैंने सुना, पहले तो मुझे काफी हैरानी हुई। फिर उस पर मेरी दिलचस्पी बढ़ी। गंगाराम को एक गुण्डा कहा गया। जब से उसने होश सँभाला है, गुण्डागिरी ही उसका पेशा है। मैंने पूछा भी कि गुण्डागिरी कैसा पेशा बन सकता है तो मुझे बताया गया कि जब से उसकी उम्र बीस वर्ष की हुई है, उसने यह पेशा अख्तियार किया है। उसने शुरू में सेठों को लूटना शुरू किया, महाजनों को सताया, सूदखोरों और पण्डों से झगड़ा ठाना। उसके साथ उसके दस-पन्द्रह चेलों का भी दल था। कई बार गंगाराम और उसका दल पुलिस की चपेट में आया। गंगाराम गिरफ्तार हुआ, जेल गया, फिर निकला। फिर लोगों ने कहा—यही गंगाराम गुण्डा है।

गंगाराम गुण्डा का घर बगल देहात में ही था। माँ थी, बहन थी, बाप थे। माँ-बाप बूढ़े थे। मगर बहन उससे छोटी थी। विधाता

ने उसकी बहन जमुना को ऐसा रूप दिया था कि कुन्दन भी मात था। मुख ऐसा लगे मानो चन्दा हो। शरीर की ललाई-गोराई ऐसी मानो किरणों का एक जाल समेटा-लपटा हो। जमुना सचमुच जमुना ही थी। मगर जमुना की बदनसीबी कहिये। उसकी शादी कहीं लग नहीं पाती थी। जहाँ कहीं भी बात चलती, लोग यह कह कर बात तोड़ देते कि गंगाराम गुण्डा की बहन और शरीफ? छिः! छिः!! बस, बात टूट जाती थी। खेल बिगड़ जाता था। जमुना मन ही मन रोती थी। माँ-बाप भी सिसकते थे। गंगाराम चुप रह जाता था।

मगर यह जो गंगाराम गुण्डा बना तो मुझे यह बात समझ में नहीं आती थी कि आखिर गुण्डा आदमी बन कैसे सकता है? क्या शौक से? क्या कोई पेशा है? नहीं तो आदमी गुण्डा क्यों हो जाता है? गंगाराम गुण्डा क्यों माना जा रहा है? और एक दिन इसी तरह मैं बाजार चला जा रहा था कि रास्ते में एक विचित्र बात देखी कि वहीं गंगाराम गुण्डा एक गली में लपकते हुए मुड़ा और भीतर घुस गया। मैं भी कुतूहलवश उधर ही चला। गंगाराम एक घर में घुसा। वहीं पर मैं खड़ा देखता रहा। कोई आध घंटे तक गंगाराम भीतर रहा और मैं एक ऐसी जगह से झाँकता रहा जहाँ से उसके सारे व्यवहार नजर आते थे। गंगाराम ने जेब से कुछेक नोट निकाले, शायद पचास हों—सौ हों और उस गरीब के तकिये के नीचे रखता हुआ बोलता रहा कि 'माँ तू जा, इलाज करा। अपने बेटे को टी० बी० से बचा। अब तेरा बेटा नहीं मरेगा। यही एक बेटा तेरी आँखों का चिराग है न?'

इतना बोलता-बड़बड़ाता गंगाराम वहाँ से तीर की तरह निकल गया और फिर जन-समाज में मिल गया। अब वह फिर गंगाराम गुण्डा था। जिसे देखकर सड़क वाले भी घबड़ाते थे।

दूकान वालों की तो बात ही छोडिये क्योंकि उसे हरकतें करते कम ही लोगों ने देखी थी, लेकिन शाहरत बहुतो ने सुनी थी

कुछ दिनों के बाद देश में सूखा पड़ा तो अनाज मँहगे हो गये। बाजार से सब चीजें गायब होने लगीं। दवा गुम, जूता गुम, सोना-चाँदी गुम, सब जरूरत बे-जरूरत चीजें गुम! जब अनाज ही महँगे हो गये तो बकिये चीजें महँगी होते कितनी देर लगेगी। यही तो समय है कि सेठ जी दो पैसा कमायँगे क्योंकि जब लोग भूखों मरेंगे तो बढ़े हुए दामों में उनका अनाज बिकेगा। दवा जब बाजार में नहीं मिलेगी तो मुँह-माँगा दाम मिलेगा। कोई मरे चाहे जिये। दवा तो छिपाओ, कपड़े बाजार से गुम कर दो या बड़े सेठ साहूकार हो तो इतना खरीद कर स्टौक कर दो कि फिर बाजार में वह चीज ही नहीं रहे। उसके बाद धीरे-धीरे शैतान की अँतड़ी की तरह चीजें निकालो और बाजार में आने दो।

इस प्रकार समय का सदुपयोग कर सेठ जी लखपति से करोड़-पति हो गये और सरकार एवं जनता में ऊँचे उठ गये। कपड़े के व्यवसायी का भी यही हाल रहा। पैसे के साथ-साथ सम्मान भी बढ़ने लगा। अन्नफरोशों, कपड़ाफरोशों, दवाफरोशों सब की इज्जत बहुत बढ़ी क्योंकि उन्होंने ऐसे संकटकाल में सरकार की और देश की मदद की थी। अरे अभागो! तुमने अपने भाइयों को ठगा! अपनी सरकार को ठगा तुमने अपना नकली इन्द्रजाल फैलाया और सबों को उसमें बाँधा! अपने कलेजे पर हाथ धर कर पूछो—है न यही बात? मगर आज तुम्हारा सम्मान बढ़ा, तुम्हारी इज्जत बढ़ी क्योंकि तुम धन वाले बन गये। समाज तुम्हारी मुट्ठी में आ गया। तुम्हीं अब सब जगह दखल दे रहे हो और इसीलिये तुम बराबर सब जगह कहते फिरते हो कि गंगाराम गुण्डा है!

गंगाराम गुण्डा अभी अभी एक जीर्ण-शीर्ण मुहल्ले के अति अभागे लोगो के बीच गया है वहाँ वह एक एक को बुला कर किसी को अन्न, किसी को रुपये, किसी को वस्त्र, किसी को दवा दे रहा है। आप विश्वास करें, मैंने उसे ऐसा करते देखा। आप ऊँची हवेलियों में बैठ कर यह सब नहीं देख सकते। आप सिर्फ सुनते भर हैं और फकत अपने कामों का ख्याल रखते हैं। मगर आप तो यह भूल ही जाते हैं कि लूट तो आप कर रहे हैं कि अन्न के अभाव में आप ने लोगों को मारा और अपना घर भरा। वस्त्र के अभाव से दूसरे सेठ जी ने मारा और महल खड़ा किया। इसी तरह आप आबाद होते गये, दूसरे बर्बाद होते गये। यह मैं नहीं कहता कि ऐसा नहीं करने वाले लोग आपके बीच में बिल्कुल हैं ही नहीं; मैं कहता हूँ कि हैं और निश्चय हैं मगर आप शायद ऐसे लोगों को देखना नहीं चाहते क्योंकि ये लोग आप के जमात में फिट नहीं हो पाते। फिर भी मैं कहता हूँ कि ऐसे लोग आज भी हैं और मैं इन्हें अत्यन्त स्नेह की नजर से देखता हूँ।

खैर! आप शरीफ हैं और गंगाराम गुण्डा! क्योंकि आप ने उसे गुण्डा करार दिया है, आज वह भी दबे-छिपे किसी कोने में बैठा रोता है कि वह गुण्डा माना जाता है। सब उस पर हँसते हैं। यहाँ तक कि माँ-बाप भी उसे धिक्कारते हैं। बहन भी देखती है तो आँचल कर लेती है। और तब गंगाराम हूक-हूक कर रोता है कि आज उसकी बहन के हाथ पीले इसलिये नहीं हो रहे हैं कि गुण्डा के घर कौन शादी करेगा? हाय रे गंगाराम! तू कहाँ अपना मुँह छिपावेगा? मगर न रो गंगाराम! न रो!! कम से कम यह लेखक तुझे पहचानता है कि तू गुण्डा नहीं है। तू हर्गिज गुण्डा नहीं है। तुझे ऐसा कहे जाने को मजबूर किया गया ताकि पूँजी-वादियों के समाज में तू मेल न खा सके।

जो कुछ हो, आज गंगाराम बहुत उद्विग्न है कि उसकी बहन जमुना फिर क्वाँरी ही रह जायेगी क्या? आखिरी आषाढ़ का महीना है। यही अन्तिम लग्न है। जमुना की उम्र उन्नीस-बीस पार कर इक्कीस लग रही है। अब शादी न होगी तो कैसे गंगाराम जिन्दा रहेगा? बहन का कलंक, उसके आँसू, उसे मार डालेंगे!

वह उठा और बहुत जोश-खरोश से पास के दस कोस पार करता हुआ शाम को उस खानदान में पहुँचा जो जमुना को लेने को तैयार तो थे मगर दहेज में पूरे दस हजार रुपये माँगते थे। गंगाराम ने वहाँ पहुँच कर धीरे से कहा—'मैं तैयार हूँ, मैं दस हजार दूँगा। मेरे घर चल कर मेरी बहन के हाथ पीले करो।' तब बात तय हुई और सम्बन्धी सब शादी करने गंगाराम के यहाँ पहुँचे। शर्त यह थी कि शादी के पहले गंगाराम पूरे दस हजार रुपये दे देगा तब ही शादी होगी, नहीं तो नहीं। गंगाराम के यहाँ सम्बन्धी आ पहुँचे, लड़का भी आ गया। शादी की सारी तैयारियाँ हो रही थीं। अचानक गंगाराम थोड़ी देर के लिये वहाँ से उठा और लपकता हुआ सेठ करोड़ीमल की दूकान पर पहुँचा। पहुँच कर सीधे उनका हाथ पकड़ा और शेर की आवाज में बोला—'मुझे दस हजार रुपये चाहिये, अभी तुरत दे दो नहीं तो खून कर दूँगा। मेरी बहन की शादी हो रही है, मुझे उसकी माँग में सिन्दूर देखना है!'

दस हजार रुपये छीनता-झपटता हुआ वह अपने घर पहुँचा और चुपचाप एक कोने में अपने होने वाले सम्बन्धी को बुला कर बोला—'ये हैं दस हजार रुपये! अब आप इसे लीजिये और चुपचाप अपने पास रखिये। कोई जानने न पाये। किसी को पता तक न चले। फिर शादी हो जाने दीजिये!' और ऐसा ही हुआ। रुपया सम्बन्धी के किस कोने में जाकर छिपा कि किसी फरिश्ते

तक को खबर न हुई। सब काम यथावत् होते रहे। सब अपने-अपने में मगन थे। और गंगाराम गुण्डा की सती-साध्वी, कुन्दन-सी बहन जमुना की शादी हँसी-खुशी हो गई। जमुना की माँग में सिन्दूर पड़ गया। जमुना के हाथ पीले हो गये। न जाने सब के रचने वाले भगवान ने कहाँ से जमुना की आँखों में उस क्षण ऐसे आँसू भरे कि उसके भाई गंगाराम गुण्डा ने उसे देखा और बहन-भाई का यह मिलाप, शायद महाकवि तुलसीदास भी वर्णन करने मे हिचकते! बहन जमुना डोली पर बैठ कर अपने नये घर को चली गई! चली गई!!

और इसके बाद ही एक जबर्दस्त कांड हो गया। सेठ करोड़ीमल खोजते-खोजते पुलिस के साथ गंगाराम के घर पहुँच गये। उन्हें विश्वास ही न था कि गंगाराम ऐसा कर के घर पर मिलेगा। इसलिये पहले सारा शहर छान मारा फिर किसी तरह गंगाराम के घर पहुँच पड़े। गंगाराम ने उन्हें देखा तो एक क्षण ठिठका। पश्चात् एक अद्भुत साहस से एक गोली चलाई। मगर ठहरिये, यह गोली न पुलिस को लगी, न सेठ करोड़ीमल को। यह गोली सीधे गंगाराम गुण्डा के कलेजे को पार कर गई और गंगाराम हाथ फड़फड़ाता हुआ धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा! उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। गुण्डा मर गया!



आत्मदीन

सेठ नागरदास एक अमीर आदमी हैं। उनके पास बहुत सा धन है। कहने वाले यहाँ तक कहते हैं कि शहर में उनसे बढ़कर किसी के पास धन नहीं है। उनके पास बीसों नौकर-चाकर, घोड़े-गाड़ियाँ, मोटरकार सब कुछ है। मैं भी मानता हूँ कि वे अमीर आदमी हैं। और क्यों न हों। वाणिज्ये वसति लक्ष्मीः। उन्होंने मानो लक्ष्मी को वर कर अपने घर में ही बैठा लिया है। खैर! जो कुछ हो, हमें फिलहाल उनकी दौलत से कोई वास्ता नहीं है। हमें सीधे जो बात कहनी है वह यह है कि इतनी लक्ष्मी घर पर होते हुये भी वे सुखी नहीं हैं। आपको यह पढ़ कर ताज्जुब होगा! लेकिन बात है सच। वे दिन-रात परिश्रम करते-करते थक जाते हैं, मगर हैरान हैं कि सुख उनके जीवन में नहीं आता! वे हैरान हैं कि वे दो घण्टे भी आराम की नींद सो नहीं सकते! वे हैरान हैं कि हर जगह उन्हें दुःख ही दुःख नजर आता है। और ये दुःख क्या हैं? उन्हें अपने धन की सुरक्षा नजर नहीं आती। उन्हें ऐसा लगता है मानो घोर पाप-पुण्य करके इतनी मुश्किलों से जो धन उन्होंने इकट्ठा किया है वह बचने का नहीं। चोर-डाकू उसे लूट लेने को आमादा हैं। जरा-सी लापरवाही उनकी तरफ से हुई कि उनकी दौलत लूट ली जायेगी। इस तरह उनके ख्याल ही

उनके दुश्मन हो रहे हैं। कभी वे सोचते कि सरकार इतना टैक्स बाँध देगी कि वे कहीं के न रहेंगे। कभी दिल में डर उठता कि एक-न-एक दिन उनके कमाने के सारे हथकण्डों के पोल खुले बगैर नहीं रहेंगे और उस दिन ताज्जुब नहीं कि वे गिरफ्तार भी हो जायँ और सरकारी मेहमान बना दिये जायँ!

सुनते हैं कि धन सुख का साधन है। मगर हमने सेठ नागरदास के जीवन में यह देखा कि उनका धन ही उनकी तलवार हो रहा है। यह धन ही उनको चैन की साँस और आराम की नींद नहीं लेने दे रहा है। और आज वे दुनिया के बहुत बड़े मनहूस बदनसीबों में से एक हो रहे हैं, तिस पर तुर्रा यह कि शहर वालों ने यह अफवाह उड़ा रक्खी है कि यदि सुबह-सुबह उनका श्रीमुख देख लिया जाय तो फिर दिन भर बे-पनाह दौड़ते फिरिये, खाना न मिलेगा। किसी तरह सेठ नागरदास को भी यह बात मालूम हो जाती तो सुन कर उनका कलेजा धकधक कर उठता। मगर दिल को टटोलते नहीं हैं कि आखिर क्यों? उन्हें सिर्फ इतना ही ख्याल होता है कि घायल पशु की तरह वे सुख-विहीन बेचैन जीवन बिता रहे हैं और इसको वे समझ बैठे थे कि यह भी किस्मत की बात है! किसी ने उन्हें अच्छी तरह विश्वास भी दिला दिया कि सभी अमीरों की यही हालत है। कोई अमीर सुखी नहीं है। दुनिया उन्हें बहुत सुखी समझती है मगर हकीकत जाकर उन अमीरो के दिलों से पूछो तो पता चले कि दुनिया के सब से बड़े अभागे यदि हैं तो ये लक्ष्मी के वरद-पुत्र ही, जिनकी शिकस्ती इन सोने की हथकड़ियों से कर दी गई है। वे उन हथकड़ियों के गिरफ्तार रह कर न रो सकते हैं न हँस सकते हैं। रोयें तो दुनिया कहेगी—धन पचाता है, हँसें तो उसके पीछे उसका दिल रोता है। उनकी हालत उन वृक्ष की डालियों की तरह हो रही है जो हवा में ऊपर

भी झूल रही है, नीचे भी गिर रही है। जीवन का ज्वार-भाटा उनकी नसीबों में कूट-कूट कर भर गया है।

मगर मैं पूछता हूँ आखिर ऐसा क्यों? मेरा यह सवाल उन सेठों-साहुकारों, अमीरों-बैंकरों, महाजनों-सूदखोरों सब से है। वे जवाब दें कि क्यों उनकी जिन्दगी इस तरह की हो गई है? क्यों उनका दिल रोता है? मगर आँखों से आँसू नहीं आते। क्यों वे जिन्दगी से घबड़ाये, बेचैन दीवानों की तरह रहते हैं मगर कोई ऐसा इलाज उन्हें नजर नहीं आता जो उनके रोगों से उन्हें छुटकारा दिलाये!

तो मैं ही इसका जवाब देता हूँ कि हाँ, उनके मर्ज का इलाज है और बखूबी है। करके देखें, आजमा कर देखें। उन्हें फायदा होगा, उनकी जिन्दगी को फायदा होगा। उन्हें नया जीवन मिल जायेगा। निश्चय ही वे सुखी होंगे।

तो पहला काम यह करें कि जो धन वे कमायें उसे स्वार्थ के ताले में जकड़ कर बिल्कुल अपना ही न समझें। वे समझें कि धन उन्हें समाज ने दिया है, देश ने दिया है। मुमकिन है कि देश के सैकड़ों, हजारों, लाखों गरीबों ने ही उन्हें दिया हो। यह एक तरह की थाती है जिस पर उनका भी हक है। यह समाज की शराफत है कि वह हँसी-खुशी साहु जी या सेठ जी को पनपते देखता है, तारीफ भी करता है, अपने से बड़ा भी मानता है। मगर इसके एवज में सेठ जी या साहु जी को भी बराबर ख्याल रखना चाहिये कि समाज का धन समाज का। उसे दो तो तुम लो। उनके बाल-बच्चे पढ़ें तो तुम्हारे बाल-बच्चे पढ़ें, नहीं तो नहीं। उनकी बहू-बेटियाँ खुश-आबाद रहें तो तुम्हारी बहू-बेटियाँ सुखी हों। नहीं तो समाज का यह धन तुम्हारे घर में पाप के घड़ों के रूप में जमा हो रहा है। जहाँ से उनके साँप पैदा होकर उस नरक की फुलवारी

का निर्माण करेंगे जिनके बारे मे आपने पढा है जहाँ घास-फूस, लता-वृक्ष सब साँपों से लिपटे हुये हैं और उन्हीं की तरह समाज का धन निर्दय स्वार्थी होकर अपने घरों में घुसाने वालों की हालत होती है। हाँ, रंग जुदा-जुदा हो सकता है यह मैं मानता हूँ। साँप के काटने से आदमी मरता है और इस धन-कादे का भी यही अंजाम है। वह आप को फौरन मारता है तो यह घुला-घुला कर, भिगा-भिगा कर मारता है। मगर मौत हैं दोनों ही। एक जीवित मौत, एक मृत मौत। फरक कुछ नहीं। होना तो यह चाहिये कि इस तरह के अमीरों की नजर खुल जाय। वह जमाना गया जब इन्सान-गुलाम खरीदे जाते थे, सहारा मरुभूमि की धूप में सुखाये जाते थे, तब बेचे जाते थे। इन्सान के जिस्मों का तेल निकाला जाता था। जिससे अमीरों की बीबियाँ आँजन बनाती थीं।

पहले दूसरे को जीने दो तब खुद जीओ, तभी मजा है। जिस समाज ने आपको सेठ नागरदास और साहु अमीरचन्द बनाया उसको भूल मत जाओ। भूलोगे तो दुखी होगे। सब कुछ रहेगा मगर बराबर बेचैन रहोगे। लक्ष्मी घर में सोयेगी मगर तुम निश्चय जागोगे। उसके पहरेदार बनोगे, एक ऐसे पहरेदार जिसके नसीब में सिर्फ रोना-तड़पना ही लिखा है। नहीं तो यह चोला छोड़ कर इन्सानियत का चोला पकड़ो। सब तुम्हारे भाई हैं। कुछ न कुछ तो सब का हक तुम्हारे ऊपर है ही। किसी ने तुम्हें अपना श्रम दिया, किसी ने अपना दिमाग दिया, किसी ने अपनी और चन्द तरह की खिदमतें दीं। देश की छत्रछाया में तुम रहे, पनपे, फूले-फले तो फिर उसकी तरफ तुम्हारी जवाबदेही छूट कैसे गई ? उल्टे समाज भर का कर्जा तुम्हारे ऊपर लद जाता है। एक नेक कर्ज, जिससे अगर बरी होना है तो समाज के साथ रह कर समाज की जनता की भलाई करते हुए समाज का ही एक अंग बन

कर रहना होगा समाज से अलग तुम रह कैसे सकते हो? अतः सच्चा समाजवाद यही है। नेहरू का नारा, ढेबर की पुकार सब यही है। समय रहते तुम समझ लो। फिर तुम्हारा भी जीवन सुखी होगा। तुम्हें चैन की नींद आवेगी। तुम्हारे दुख के सब बादल हट जायेंगे और दुनिया में तुम्हें फिर किसी से कोई शिकवा-शिकायत नहीं रहेगी। धन का सच्चा सुख तुम्हें जरूर मिलेगा। अब चाहे आप मानें या न मानें!



इन्सान बिक गया !

मैं बचपन में एक बड़ा भला लड़का था। धर्म के उपदेशों का प्रभाव मुझ में कूट-कूट कर भरा था। मैं पाप करने से डरता था। मै किसी को गाली बकने से बचता था। मैं किसी को सताना नहीं चाहता था। मैं झूठ बोलने से डरता था। मैं सच्चा और ईमानदार रहना चाहता था। मुझे भय रहता था कि अगर मै अपना धर्म छोड़ूँगा तो नरक में चला जाऊँगा, जहाँ बड़े कष्ट झेलने पड़ेंगे। मैं नरक में जाना नहीं चाहता था। मैं सुन्दर शान्त जीवन व्यतीत करना चाहता था।

इसी आचार-विचार पर मै बड़ा हुआ तो दुनिया मुझे विचित्र सी लगने लगी। मैंने दूसरों को देखा कि वे झूठ बोल कर कमा रहे हैं। छल-प्रपंच कर अमीर बन रहे हैं। धोखा-दगा दे कर घर-मकान उठा रहे हैं, तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। लेकिन मै अपने सिद्धान्त से नहीं डिगा। लेकिन इस दुनिया में मेरी बरकत नहीं हुई। मैं गरीब का गरीब ही रहा। मैं जब घर पर काम करके पहुँचता तो मेरे भाई और बहन, माँ और बाप बहुत धिक्कारते, कहते—तुम बुद्धू हो। देखो, इस जमाने में तुम्हारी तरह के तमाम काम करने वाले लोग अमीर हो रहे हैं। उनके बाल-बच्चे सब सुखी हैं। मगर एक तुम हो कि बस, मिट्टी की मूरत !

घर के लोगों को तुम से जो उम्मीदें थीं, सब तुमने चूर-चूर कर दिया। हम बड़े अभागे हैं।

तो यह सुन कर मुझे बड़ा दुःख हुआ। क्या सत्य पर रहने वाले प्रत्येक आदमी की यही गति होती है? मैं झूठ नहीं बोला तो क्या इसी दिन के लिये? मैंने छल-प्रपंच नहीं किया। अपने भाइयों का गला नहीं घोटा। मैंने इन्सान को इन्सान की तरह माना, तो क्या इसी लांछन के लिये? मैं रो उठा, मेरा दिल रो उठा। हाय री दुनिया! तू रोती है, तड़पती है, दुख से कराहती है, फिर भी तू ऐसे ही लोगों को बरकत देती है जो छली-प्रपंची, झूठे-दगाबाज, सब कुछ हैं? और उन लोगों का क्या हाल कर रक्खा है जो तेरे नाम पर पड़े हुए हैं? उन सत्य और इन्साफ के पुजारियों का! उनकी माँ हँसती है, बहन हँसती है। वह निकम्मा और बेकार गिना जाता है। उनका जीना-मरना सब धिक्कार कहा जाता है।

तो मैं क्या करूँ? दोष किसका है? मेरा या इस समाज का? मैं गरीब ही रह रहा हूँ। फिर भी सत्य और ईमान मेरे साथ है इसलिये बड़ा संतोष है। मगर मेरे घर वालों को संतोष नहीं। मेरे अड़ोस-पड़ोस के लोगों को संतोष नहीं। मेरी स्त्री मुझे देख कर रोती है, बिलखती है। उसके आँसू कहते हैं कि वह पड़ोस में जब जाती है तो दूसरों की स्त्रियों के बाजुओं में गहने देख कर उसका दिल टूट जाता है। मोहन-सोहन की स्त्रियों के गले का हार देख कर उसके कलेजे पर साँप लोटते हैं। बच्चे फटे कपड़े पहने घूमा करते हैं। दूसरों के बच्चे रोज साटन बदलते हैं। हाय! मैं क्या करूँ? इस समाज में मैं कैसे रहूँ? कम से कम मुझे अपनी फटे हाली में सन्तोष से रहने तो दो!

मेरी स्त्री पर कोई हँसे तो नहीं। मेरे बच्चों को कोई दुत्कारे तो नहीं! मेरे माँ-बाप को कोई धिक्कारे तो नहीं!

आखिर मैं इन्सान ही तो हूँ! कभी-कभी मेरे दिल में भी विद्रोह होता है कि या तो मैं इस सड़े-गले समाज में ही आग लगा दूँ, जिसने पैसे के बदले मेरे भाइयों का ईमान खरीदा या फिर मैं अपने ही में आग लगा दूँ। कुछ तो करना होगा? मैं सन्तोषी हूँ तो क्या हुआ? मेरी स्त्री रोती है, भाई रोता है, माँ रोती है, सब रोते हैं!

एक दिन की बात है कि मेरे ही घर में इस बात को ले कर एक झगड़ा खड़ा हो ही गया। या तो मैं सबों की तरह हो जाऊँ या फिर सबों के गले में पत्थर रख कर तालाब में डुबो दूँ। यदि मैं जरा सा जमाने की हवा के साथ चलूँ तो सब को सुख और आनन्द मिलता है। मैं सब की नजर में ऊपर उठता हूँ। मेरी कीमत घर-बाहर शुरू हो जाती है। अतः मुझे माँ-बहन के आँसू देख कर झुकना पड़ा! और मैंने भी सोचा कि मैं सत्य को बेच कर पैसे में बदलूँगा। ईमान को बेच कर दौलत जमा करूँगा। जो दुनिया कर रही है सो मैं भी करूँगा। मैंने ऐसा ही किया। मैं बदल गया। मेरी आत्मा को चोट हुई तो मैं उसे पी गया। मेरा दिल रोया तो मैंने अपने को समझाया। मैं घड़ी के काँटे की तरह डोलने लगा। दूसरे ही दिन मैंने व्यवसाय में अपने भाइयों का गला काटा। गेहूँ का व्यापार करता था। गेहूँ में कंकड़-मिट्टी फेंटना शुरू किया। मेरे गेहूँ की बाजार में बहुत माँग थी। बच्चे-बूढ़े सभी खाते थे। अब मेरे गेहूँ खा कर बच्चे के पेट में दर्द शुरू होने लगा। जहरिया होने लगी। बच्चे तड़पने लगे और मरने लगे। गेहूँ के साथ मैं घी भी बेचता था। घी में मैं मूँगफली का तेल फेंटने लगा।

उसने जाकर इन्सान के पेट में विद्रोह किया। लोगों के पेट फूलने लगे। इन्सान का दिल दिमाग सब दूषित होने लगा। मैं और भी चीजें बेचता था। सबों में मेरे फेटफाट ने इन्सानियत का गला घोंटना शुरू किया। एक मल्लाह सारी नाव को डुबो बैठा। मैं एक अधम व्यवसायी अब समाज को दूषित करने लगा। फिर जब समाज दूषित होने लगा तो मेरे नेता लम्पट निकलने लगे। मेरे शिक्षक-प्रोफेसर सब हैवान होने लगे। बड़े-छोटे, ब्राह्मण-शूद्र सबों के दिमाग पर इसका कुछ ऐसा असर पड़ने लगा कि सारा का सारा समाज दूषित हो गया।

मगर मैं अमीर बनने लगा। मेरे रुपये अब बैंक में जाने लगे। बैंक में मेरी ही तरह सैकड़ों सेठों-व्यवसाइयों की दौलत रोज इकट्ठी होती थी। अब मैं भी उनमें एक हो गया। मेरी इज्जत होने लगी। इसके बाद तकदीर का खेल! एक दिन मुझ पर किसी ने कोई गहरा आरोप लगा दिया तब पुलिस मेरे घर पर अचानक, मेरे अनजाने, पहुँच गई और मुझे गिरफ्तार कर, सरे बाजार घुमाते हुए थाने पर ले गई। मुझ पर बड़ा भीषण आरोप था। मैंने देश की अत्यन्त आवश्यक चीज—हजारों टन लोहा कालेबाजार में बेच दिया था। अदालत में मेरी हाजिरी हुई और मुझ पर एक लाख जुर्माना बैठाया गया। अलावे तीन वर्ष सख्त कारावास! मैं तड़प कर रह गया। मैंने सोचा कि मेरे घर वाले मुझे अवश्य छुड़ा ले जायँगे। मैंने लाख से ऊपर रुपये जमा कर घर पर रख दिया था। मगर आप शायद नहीं मानेंगे कि मेरे घर वाले इस फैसले को सुन कर कि मुझे एक लाख रुपये जुर्माना भरना पड़ेगा, सब के सब घर छोड़ कर अज्ञात शहर को लापता हो गये। सब ने सोचा कि आया हुआ रुपया जाने देना ठीक नहीं। तिस पर एक लाख! उससे कितनी

दुनिया बनेगी ! अतः वे मेरी मोह-माया छोड़ कर चल दिये ! तो मैं जेल भोग कर सात वर्ष के बाद निकला। रुपये न भरने के कारण चार वर्ष और सजा हो गई। शहर के किनारे एक खंडहर के पास खड़ा होकर मैं सोचने लगा कि मैंने जीवन का सत्य बेचा, ईमान बेचा, इन्साफ बेचा मगर मुझे क्या मिला ? न राम मिले, न रहीम ! माँ छूटी, पिता छूटे, स्त्री छूटी, सब छूटे। ईमान-इन्साफ की गलाघोंटी ने सबका गला घोंट दिया। मैं, मैं न रहा। घर घर न रहा। रुपयों के दरवाजे पर इन्सानियत सरे बाजार बेच दी गई ! रुपयों ने सबको जीता ! पूँजीशाही जिन्दाबाद ! इन्सान बिक गया ! इन्सान भाग गया !! इन्सान मर गया !!!



भाई-भाई

हम दोनों भाई थे। बचपन में साथ ही खेले-कूदे और बड़े हुए। माँ-बाप ने दोनों को समान लाड़-प्यार से पाला-पोसा और पढ़ाया। क्या घर, क्या बाहर—हम दोनों ऐसे रहते थे मानो दो देह एक प्राण हों। खाना एक साथ खाते थे, पढ़ने एक साथ जाते थे और स्कूल से भी घर एक ही साथ लौटते थे। हम दोनों भाइयों से कभी कोई झगड़ा नहीं करता था क्योंकि शोहरत यह थी कि जहाँ किसी ने झगड़ा किया कि हम दोनों भाई उसकी जान न छोड़ेंगे। हम दोनों भाई बड़े सुखी थे और प्रसन्न जीवन व्यतीत करते जाते थे। इसी तरह हम लोग बड़े हुए। दोनों की शादी हुई। शादी के दो-चार वर्षों के बाद बाल-बच्चे होने शुरू हुए। देखते ही देखते दस-बारह बरसों में दोनों के चार-छः बाल-बच्चे भी हो गये। बाल-बच्चे भी हम लोगों को देख-देख कर आपस में बड़े खुश रहते थे। ये हम में एक को छोटे बाबू, दूसरे को बड़े बाबू कहा करते थे। हमारी औरतें भी छोटी माँ, बड़ी माँ बनीं।

हम लोगों का यह जीवन देख कर हमारे माता-पिता बड़े प्रसन्न रहते थे। उनका मन और प्राण भर आता था कि हमारे बाल-बच्चे इसी तरह सुखी रहें, आबाद रहें। उनका वंश-वृक्ष इसी प्रकार फूले-फले तो परलोक में भी उनकी आत्मा को शान्ति मिले। यहाँ तक हुआ कि मेरी बड़ी लड़की जब चौदह-पन्द्रह

वर्ष की हो गई तो शादी ठीक करने की बात हुई। जब शादी ठीक कर कन्या दान करने का समय आया तो उसकी छोटी माँ ने उसे अपनी बेटी समझ कर दान किया और उसके बड़े बाबू ने समधी से गला मिलाया।

राम-लक्ष्मण की जोड़ी मिल रही थी और हमारा घर अयोध्या हो रहा था। इस तरह काफी दिन गुजरने के बाद एक दिन ऐसा हुआ कि हमारे यहाँ एक रिश्तेदार मुंशी हीरालाल आये। शुरू से तो उनके दस-पन्द्रह दिन ठहरने की बात थी, मगर न जाने क्या हुआ कि वे महीनों ठहरे। उनसे हम लोगों का रिश्ता ऐसा पड़ता था कि किसी से कोई पर्दा न था। मेरी स्त्री उनके सामने होती थी। मेरे भाई की स्त्री भी। हम लोग दिन भर अपने-अपने काम पर चले जाते थे। वे हमारी स्त्रियों के बीच बैठ कर बातचीत किया करते थे। रिश्ते में श्रेष्ठ होते थे इसलिये कोई ख्याल न था। कुछ दिनों के बाद उनकी स्त्री और उनकी छोटी बहन भी हमारे यहाँ चली आईं। फिर तो पूरा परिवार ही भर गया। खैर! हम लोगों को कोई कष्ट न था क्योंकि हम लोग सुख से रह रहे थे।

एक दिन हम लोग काम से लौटे तो मेरी स्त्री का मन कुछ दुखी था। मैंने सोचा कि शायद कुछ तबियत खराब हो क्योंकि बगैर तबियत खराब हुए हमारे घर में और किसी वजह से किसी का मन दुखी हो, हमारी कल्पना से बाहर की बात थी। मैंने पूछा कि क्या वैद्य बुलाऊँ? तो उसने कहा—वैद्य आकर क्या करेंगे। तुम तो दिन भर घर से बाहर रहते हो, तुम्हें कुछ पता भी है कि तुम्हारे घर पर क्या हो रहा है? तुम तो बड़े राम-लखन बने फिरते हो मगर तुम्हारे भाई साहब तुम्हारे ही गले पर छुरा चला रहे हैं। इसकी भी कुछ खबर है? खैर! तुम्हें कुछ न हो मगर आखिर तुम्हारे बाल-बच्चे भी तो हैं? तो मैंने पूछा कि

आखिर क्या हुआ ? क्या किसी बाहर के आदमी ने आकर कुछ कहा ? अगर किसी ने मेरे भाई के बारे मे कुछ शिकायत की है तो कहने वाले का गला घोंट दूँगा !

तो वह बोली—बाहर का आदमी क्यों कहने आवेगा ? घर ही में जब आग रखी जा रही हो तो बाहर वाला आग लगाने क्यों आवेगा ? लेकिन तुम्हारी आँखें भी तो हों ? तब मैं बड़ा घबड़ाया। मैंने पूछा—साफ-साफ कहो क्या बात है ? वह बोली—घर का रुपया बाहर रखा जा रहा है। उस रुपये से तुम्हारे भाई साहब का रोजगार फैल रहा है। घर में तो दिखाने को सौ-पचास रुपल्ली फेंक देता है। मगर बाहर हजारों का वारा-न्यारा हो रहा है। क्या यही इरादा है कि आँख में पट्टी दे कर सो रहो ?

मैं बड़ा अचकचाया। मैं कुछ सोच न सका कि क्या बात है। इसलिये मैं बिगड़ खड़ा हुआ—चुप रहो। जो बोली सो बोली। फिर ऐसी बात जबान पर न लाना। तब उसने कहा—तुम खुश रहो या बिगड़ो, मेरी बला से, मगर बच्चों का गला घोंट क्यों नहीं देते ? जो इस तरह बाद हमारे, वे एक दिन तड़पने को रहेंगे। इस पर मैंने कहा कि मैं इसका पता लगाऊँगा।

अब मेरे दिमाग में यह बात घूम-फिर कर आने लगी। आखिर क्या बात है ? पहले तो कभी इस तरह की बात सुनने में नहीं आई। जरूर कुछ न कुछ बात है। तभी मेरी घरनी ने ऐसा कहा। कुछ पता तो लगाना ही चाहिये। यह सोच मैं बाहर बरामदे में टहलने लगा। इसी बीच मेरे भाई का लड़का एक नया कोट हाथ में लिये हुए भीतर घुस गया। कोट दूर से सिल्क की तरह चमका तो मेरा दिल सन्देह से भरने लगा। क्या इसी तरह मुझ से छिपा-छिपा कर अपने बच्चे को सुखी रखता है और मेरे बच्चे मारे-मारे फिरते हैं ? यह बात नहीं कि पहले इस तरह की बात न

होती थी नहीं, खाने-पहनने में कोई रोक टोक न थी यहाँ तक हुआ कि एक बार मेरे लड़के ने ही अठारह रुपये गज का गरम कपड़ा खरीद कर कोट सिला लिया था तो भी किसी ने कुछ नहीं कहा। जिसकी जो जरूरत होती थी यथाशक्ति पूरी की जाती थी। लेकिन आज वह बात सूई की तरह मुझे चुभी। मैं अज्ञान मन को समझा न सका कि छलना आखिर कौन है ?

इसके बाद दूसरे रोज, तीसरे रोज याने एक महीना भी बीतने न पाया कि मुझे अब हर चीज में सन्देह मालूम होने लगा। खाने में, पहनने में हर जगह। भाई यदि कहीं बाजार में किसी के यहाँ जाकर बैठता तो मैं उसे बड़े शक की नजर से देखता। इस बीच मुन्शी चम्पक लाल मेरे यहाँ विराजमान थे। उनकी बहू की बहन भी यहीं थी। अब इन तीनों की मेरी स्त्री से बहुत पटती थी। मेरी भावज से कम। घर में स्त्रियों के बीच भी कुछ खटपट शुरू हुआ। कभी-कभी यह घोर झगड़ा का रूप ले लेता। तू-तू, मैं-मैं तक बात पहुँचने लगी। मैं हैरान था। मेरा भाई हैरान था। बाल-बच्चे हैरान थे। मेरे माता-पिता हैरान थे कि आखिर हो क्या रहा है ? घड़ी की चाबी कहाँ गड़बड़ पड़ रही है ? मगर बात यहाँ तक आगे बढ़ गई थी और रंग इतनी दूर तक बदल चुका था कि अब इन सब विवेचनाओं की गुञ्जाइश ही नहीं रह गई थी।

अब मेरे छोटे भाई का भी कुछ ख्याल बदला। वह मुझसे बचना चाहता था। वह मुझ से बात-चीत से दूर रहना चाहता था। वह मुझ से भेंट करने से भी हटता था। मैं इससे उनको मन-चोर और अपने को अपमानित समझता था। मैं बराबर यही सोचने लगा कि चोर की दाढ़ी में तिनका! अपना घर भरने की फिक्र में हमारे बाल-बच्चों को तबाह करने चला है। इसलिये अब उसे

हम से बोलने में भी ना-गवार गुजरता है मेरी नजर भी उसको काटती है लेकिन दूसरे मुझे बराबर समझाते कि नहीं, ऐसी बात नहीं। तुम्हारा भाई फिर भी तुम्हारा भाई है। वह इसलिये तुमसे दूर रहता है कि शायद कोई ऐसी बात तुम बोल बैठो जिससे उसे बड़ा दुःख हो, उसे चोट लगे। उसके दिल में कोई छल-कपट नहीं। वह उसी तरह तुमको मानता है जिस तरह आज से पहले मानता आया। मगर मेरे दिमाग पर इसका कोई असर न हुआ। मैं दिन पर दिन उससे दूर हटता गया। एक दिन मेरे रिश्तेदार और उनकी स्त्री मेरे पास आई और रो-रोकर कहने लगी कि कहो तो हम यहाँ से चले जायँ या कहीं गंगा में पत्थर बाँध डूब रहें। हम लोगों का तुमसे मिलना-जुलना ही पाप हुआ। अरे! तुम्हारी आँखें इसी तरह ही बन्द रहतीं तो ठीक था। उनका सोने का महल खड़ा हो जाता। तुम लोग भीख माँगते चलते। यही ठीक होता। तुम्हारी तरफ से कुछ क्या छेड़ा कि उसने और उसकी बहू ने कोई अपमान हमारा नहीं छोड़ा। यदि हमारा ही अपमान करते तो हम चुप रह जाते। यह भी एक बात होती। मगर तुम्हे, तुम्हारी स्त्री और बाल-बच्चों को भी चाण्डाल के घर जन्म लेने का शाप उसने दिया।

फिर क्या था! मेरे क्रोध का पारा बहुत चढ़ा और इसी क्रोध में मैंने उसकी स्त्री को चिल्ला कर बुलाया और बहुत बुरा-भला कहा। बहू चुपचाप सुनती रही और उसकी आँखो से टपटप आँसू गिरते रहे। उसके बच्चे भी यह हल्ला-गुल्ला सुन कर वहाँ पहुँच गये। मैंने उनमें से एक को पकड़ कर इतने जोर का धक्का दिया कि वह आँगन में तड़फड़ा कर गिर पड़ा। तब मैं इसी गुस्से में घर से बाहर निकला। बाहर अपने भाई को मुहल्ले की एक बड़ी दूकान में खड़ा देखा तो और गुस्सा

बढ़ा अवश्य यह मुझसे विश्वासघात कर रहा है मेरा गुस्सा बेहद बढ़ा। मैं एक बार बहुत जोरों से अपने भाई का नाम ले कर चिल्लाया—लुच्चे! गधे!! मेरी ही आँखों के सामने मुझ से द्रोह! मैं भिखारी बनूँगा और तू पैसे भरेगा! मैं तेरा खून पी जाऊँगा! दगाबाज!! मगर मैं वहाँ भी नहीं रुका। मैं हाँफता हुआ आगे बढ़ गया। शाम के वक्त चारों ओर चहल-पहल थी। उसी भीड़ में मैं पागल सा मिल गया। थोड़ी देर बाद मैं अनाप शनाप सोचता हुआ दौड़ने सा लगा। मुझे लगता था, मेरे माथे-पर बैठा हुआ मुझे कोई झकझोर रहा है और मैं भूत सा दौड़ा जा रहा हूँ। मैं ठीक ही में दौड़ने लगा। मेरी चाल तेज हो गई। इतने पर भी सन्तोष न हुआ तो जोरों से दौड़ कर सड़क के उस पार पहुँचना चाहा मगर एकाएक एक धड़ाम सी नगाड़े जैसी कर्कश आवाज उठी! और मैं रास्ते को इधर से उधर पार करता हुआ कुछ समझ न सका कि आखिर यह क्या हुआ? सिर्फ मेरा पागलपन एक-ब-एक वहाँ थम गया। देखा कि मोटर-गाड़ी अचानक रुक पड़ी। उससे कोई टकराया। चक्के के नीचे वह गिरा और···अरे! यह क्या? एक-दो-तीन! खून से सड़क भर गई! मैं भी और लोगों के साथ उसके निकट दौड़ कर पहुँचा तो उसने हाथ फैला कर मेरे गले में डाल दिये। भैया! अब मैं चला। तुम मुझे नहीं समझे! तुम सड़क से पार क्यों हुए? तुम अभी अभी मोटर से दब जाते भैया! तुम दब जाते!! इतना कहते-कहते उसके हाथ ढीले पड़ गये। साँस रुक गई। लाश वहीं पड़ गई। वहीं पर किसी ने बहुत जोर से चिल्ला कर कहा कि 'भाई के लिये भाई मर मिटा!' तो डंके जैसी यह आवाज मेरे हैवान दिल में ऐसी टकराई कि मैं बेहोश हो गया!! उफ! उफ!!

—:※:—

मुक्ति

विन्ध्य-प्रदेश के जंगलों के भीतर दो राज्य थे। एक बड़ा, एक छोटा। मगर दोनों बहुत सुखी थे। ठीक समय पर वर्षा होती थी। ठीक समय पर फसल काटी जाती थी। ठीक समय पर लोग राज्य को कर दिया करते थे। उनके राजा भी बड़े अच्छे थे। कर लेते थे और खजाना भरता था तो उसका अधिकांश भाग प्रजा पर खर्च भी करते थे। बाहर का कोई मुसाफिर या यात्री दोनों राज्यों को देख कर कह ही नहीं सकता था कि यहाँ राजा और प्रजा में कोई भेद भी है। बहुत दिनों तक दोनों राज्यों में बड़ा प्रेम रहा। एक का दुश्मन दूसरे का दुश्मन समझा जाता था। यहाँ तक हुआ कि यदि कभी छोटे राज्य में भी पास-पड़ोस के किसी राज्य ने उँगली उठाई तो उसके पड़ोसी इस बड़े राज्य ने तुरत तलवार उठाई!

इसी छोटे राज्य में एक बार एक प्रेम की लतिका फूटी जिसकी शोहरत सारे राज्य भर में होने लगी। लाली उस लता का नाम था और वह जवान विजय था। विजय और लाली की प्रेम-कहानी कैसे शुरू हुई सो भी शिष्ट भाषा में मैं कहूँगा। विजय के पिता

लाली के यहाँ बराबर जाया करते थे। दोनों पास-पड़ोस में रहते थे। बचपन से ही विजय लाली को जानता था और लाली विजय को। फिर दोनों बढ़ कर जवान हुए तो विजय तो सुन्दर जवान निकला मगर लाली के रूप का वर्णन पूरा-पूरा नहीं किया जा सकता। वह इतनी रूपवती निकली कि रूप भी शर्मा जाय। उसकी उपमा चाँद से भी देना ठीक नहीं। चाँद रोज घटने-बढ़ने की चीज है। लाली का सौन्दर्य बढ़ता ही जाता था।

दोनों में प्रेम शुरू हुआ। मगर वह आधुनिक फिल्मी प्रेम न था। उस प्रेम में बड़ी गहराई थी। उस प्रेम में एक-दूसरे के लिये होम हो जाने की तमन्ना थी। वह, वह प्रेम था जिसे देवता भी देखना पसन्द करते। वह, वह प्रेम था जिसका निर्माण सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने किया था। प्रेम जो बढ़ा तो इतना कि दोनों एक दूसरे के हो जाना चाहते थे। मगर उनमें एक बड़ी भारी रुकावट यही पड़ती थी कि दोनों दो जाति के थे। जिस चीज को हृदय ने सींचा उसको अब समाज तोड़ देना चाहता था। अब क्या हो? दोनो बराबर विचार किया करते। मुश्किल यह थी कि समाज में उस प्रेम को कोई स्वीकार करना नहीं चाहता। समाज की नजरों मे उस समय और आज भी प्रेम ऐसा एक रोग है जो जहर की तरह जहरीला और काँटे की तरह कँटीला है। जिसे अगर पनपने दिया जाय तो समाज का समाज ही खराब हो जायेगा। मगर जरा समाज वालों से पूछो तो सही कि यह रोग कहाँ से पैदा हुआ? सृष्टि कहाँ से बनी? समाज कहाँ से बढ़ा? दुनिया कैसे फैली? सभी प्रेम के परिणाम हैं। प्रेम के रूप में भेद हो सकता है। स्त्री-पुरुष का प्रेम, भाई-भाई का प्रेम, माता-पिता का प्रेम। मगर है मूल में प्रेम ही। प्रेम पवित्र है तो सब गवारा है। यदि कलुषित है तो उसे हम भी बुरा मानते हैं और दुतकारते हैं लेकिन प्रेम

को हम बिल्कुल इन्कार कर ही कैसे सकते है ? पर पता नहीं कि क्यों समाज ने प्रेम को बराबर बुरा माना। यदि हमारा भाई किसी से प्रेम करे तो वह आवारा है। अगर कोई लड़की हम से प्रेम करती है तो होना है। यदि हम कारबार में किसी का गला घोंट कर अमीर बनते हैं तो हम बड़े आदमी हैं। हम समाज का समाज तबाह कर देते हैं तो भी हम समाज की नजरों में ठीक हैं, पूज्य हैं, महान् हैं। मगर शुद्ध प्रेम भी बुरा है, क्योंकि वह प्रेम है। क्या हमें यह लिखना होगा कि रामायण और महाभारत बहुत-कुछ प्रेम पर ही आधारित हैं ? श्रुति और पुराण भी समस्त मानवजाति में प्रेम की ही व्याख्या करते हैं। ब्रह्मा ने भी स्वर्ग का अगर नक्शा खींचा तो हम उसे प्रेम के ही रूप में मानते हैं—जहाँ शुद्ध प्रेम है, अविरल प्रेम है और गंगा-जमुना की तरह प्रेम है।

मगर आज के हमारे समाज में प्रेम पाप है—महापाप ! सच ही उस विचारक ने महापाप किया होगा। जिसने समाज को पहले पहल यह विचार दिया होगा। क्या यह सत्य नहीं कि हिन्दुस्तान का बहुत बड़ा मानव-समाज—लाखों-करोड़ों इस प्रेम के अभाव में समाज से लांछित-वांछित घुट-घुट कर मर रहे हैं। मरें या न मरें, यह सत्य है कि अगर मानव-हृदय में सच्चे प्रेम को दबा दिया जाय तो इन्सान के शरीर से आधी शक्ति तो उसी वक्त से जाने लगती है ? क्योंकि शरीर और आत्मा को जो बिजली की तरह एक करेण्ट (चेतना) देता है वह प्रेम ही है। और हमारा देश इन सबों से विहीन, सत्य को इन्कार करते हुए सही प्रेम को धता बताता हुआ अपनी पीठ आप ठोंकता है।

समाज ने विजय और लाली को प्रेम करने नहीं दिया तो वे लुक-छिप कर प्रेम करने लगे। घर से कुछ ही दूर पर एक छोटी सी जमुना थी। जहाँ वे रोज रात को पहुँचने लगे। एक दूसरे की

बाँह पकड़े हुए शपथ लेने लगे कि वे एक दूसरे के बगैर जी नहीं सकते। लाली अगर चाँदनी है तो विजय चाँद है। चाँद डूबेगा तो चाँदनी डूब ही जायेगी!

लेकिन यह प्रेम की कथा ज्यादा दिन तक समाज से छिपी न रह सकी। समाज से बढ़ते-बढ़ते राज्य तक फैली फिर इस राज्य से बढ़ कर पड़ोस के राज्य तक पहुँच गई। पहुँची भी तो दुगनी-तिगुनी होकर। महाकवि जायसी की तरह किसी ने उस राज्य के राजा से कह सुनाया कि महाराज! लाली क्या है गोया साक्षात् सौंदर्य की मूर्ति है, इन्द्र की रम्भा है, उर्वशी है! राजा के दिल में तब साँप लोटा। वह एक ही रात में पड़ोस का भाई-चारा वगैरह सब भूल गया। कहाँ तो सारा जीवन उसने एक सच्चे वीर की तरह अपने पड़ोसी छोटे राज्य की रक्षा का वचन दिया था, अब उसी पड़ोसी राज्य की एक नारी पर उसकी नजर फिरी, जो राज्य-धर्म-वर्जित है। उसने छोटे राजा को कहला भेजा कि लाली को कल शाम तक हमारे यहाँ हाजिर करो!

तब छोटे राजा ने अपने मंत्रियों को बुलाया और सारी रात सलाह होती रही। तय हुआ कि यह देश-धर्म के आचरण-विरुद्ध है। यह नहीं हो सकता। हमारी बहू-बेटी हमारी इज्जत है! अपनी बहू-बेटी को भेज कर इज्जत बचाने का ढिंढोरा पीटना, ढोल का खोल पीटना है। यह नहीं होगा!!

और यह नहीं हुआ। पैगाम भेज दिया गया। लाली उस राजा की भेंट नहीं होगी। यह एक राज्य की इज्जत का सवाल है। उसी रात लाली और विजय फिर उसी नदी के किनारे मिले तो लाली ने ही शुरू किया—अब क्या होगा?

तो विजय ने कहा—जान दे देंगे मगर तुम्हें जाने न देंगे।

लाली ने कहा—मैं भी अपने शरीर में आग लगा कर इस रूप को जला डालूँगी।

तो विजय ने कहा—यदि ऐसा होगा तो मैं इस दुनिया में फिर नहीं रहूँगा।

लाली तब बोली—तो वह राजा नहीं मानेगा और हमारे देश पर चढ़ाई करेगा। हम उसका मुकाबला नहीं कर सकेंगे। हमारा देश तबाह हो जायेगा। वधुओं की चूड़ियाँ टूटेंगी। घर-घर बेवायें रोयेंगी!

विजय ने कहा—ऐसा नहीं होगा। मैं तुम्हे लुटते नहीं देखूँगा। हमारा राज्य तुम्हारा सौदा नहीं करेगा।

इसके बाद चाँद डूब गया। दूसरे ही दिन उस बड़े राजा ने छोटे राजा के राज्य पर बड़े जोर-शोर से चढ़ाई कर दी। फौजों का आलम नगर पर छा गया और नगर का मिटना चन्द घण्टो का सवाल हो गया। छोटे राजा की तमाम प्रजा बड़ी घबड़ाई, फिर भी और उन लोगों ने राजा से जा कर ऐलान किया कि हम आप के साथ ही जियेंगे और मरेंगे। इस दुश्मन का मुकाबला हम करेंगे। युद्ध हो! नगर की इज्जत, राज्य की इज्जत नहीं बेची जायेगी।

और युद्ध हुआ। बड़े राजा उस तरफ से आये और छोटे-छोटे राजा इस तरफ से। दोनों का आमना-सामना हुआ। दोनो ने एक दूसरे को देखा। इसके बाद युद्ध पूरे जोर-शोर से होने लगा। सैकड़ों इधर से, सैकड़ों उधर से कटने लगे। युद्ध बढ़ता ही गया। एकाएक यह क्या? वह रूप-सुन्दरी लाली आई और बाँका जवान विजय आया। दोनों राजाओं के बीच वे दोनों खड़े हो गये। जिसके लिये यह युद्ध हो रहा था, उस बेहद सुन्दरी लाली को बड़े राजा ने देखा तो उसकी आँखें चौंधिया गई। एक

बिजली कड़क गई। उम्मीद आसमान पर चढ़ गई। मगर यह क्या? विजय एक बार जोश से फड़का। बगल से एक तलवार निकाली और एक ही वार में तलवार लाली की छाती के आर-पार हो गई। उसके बाद ही वह तलवार लाली की छाती से निकलकर विजय की छाती में घुस गई। युद्ध उसी क्षण बन्द हो गया। दोनों राजा एक दूसरे से फिर मिल गये। खून के छींटों ने दोनों के हृदय को साफ कर दिया। दोनों देश बच गये—प्रेम अमर हो गया! जहाँ तलवार हारी वहाँ प्रेम जीता!!



रूप का सौदा

हरिदास एक गरीब आदमी था। उसके पास कोई पूँजी न थी कि वह कोई व्यवसाय कर सके। इसलिये वह कहीं छोटी-सी एक नौकरी करता था। नौकरी से उसे सत्तर रुपये तनख्वाह मिलती थी जिससे वह अपने परिवार की गुजर कर सकता था और गुजर होता था। उसकी एक बहन थी चम्पा, और भाई कोई नहीं। उसकी स्त्री थी और एक बच्चा था। चम्पा जब तक नादान रही तब-तक तो लोग उसे ठुकराते रहे। बुरा-भला कहते रहे। मगर ज्यों ही वह चौदह की ड्योढ़ी पर पहुँची कि सुबह में गुलाब के फूल की तरह उसका रंग निखर आया और चलती भाषा में वह बेहद सुन्दर दीखने लगी। तब लोग उसे बुरा-भला नहीं कहते थे। तब लोगों की नजर में वह अच्छी जँचने लगी। तब लोग उसकी प्रशंसा करने लगे।

चम्पा जवान हो गई। और एक दिन बड़ी दौड़-धूप कर उसका भाई हरिदास उसकी शादी कर पाया। मगर शादी में एक गहरी खामी यही थी कि उसका पति कुछ रोगी मिला, तो हरिदास ने सोचा वह और उसकी बहन चम्पा उसकी सेवा कर उसे ठीक कर लेंगे इसलिये शादी हो गई। मगर चम्पा की की तकदीर उस पर हँस रही थी। चम्पा के भाग्य में सुहाग का सिन्दूर न बदा था। चम्पा की तकदीर में चूड़ियाँ पहनना न था। सो लाख सेवा करते-करते भी उसका रोगी पति न बच सका और मर गया। चम्पा विधवा हो गई!

इस पर चम्पा बड़ी रोई। अकेले रोई। घर में चुपचाप छिप कर फफक-फफक कर रोई। अन्त में भगवान पर अपना भाग्य सौंप कर चुप हो गई। अपनी चूड़ी आप ही फोड़ डाली, सिन्दूर का सिन्धौरा आप ही कुँआ में फेंक दिया और लाली पोंछ दिया। तब भी वह बहुत रोई। उसके बाद वह फिर चुप हो गई। फिर न रोई। उसने देखा—जो होना था वह हो गया। अब और रोने से उसका भाई हरिदास बर्बाद हो जायेगा। उसको अपने भाई से बड़ा स्नेह था—मोह था। वह तो लुटी ही, हरिदास लुटेगा तो दोनों भाई-बहन कहाँ रहेंगे? और तब से उसने रोना छोड़ दिया।

चम्पा चुपचाप अपने भाई के यहाँ रहने लगी। उसे अब कोई शिकवा-शिकायत न थी। अब नित्य सुबह से शाम तक अपने घर की सेवा करती और भगवान का नाम लेते हुए संतोष का जीवन बिताती थी।

मगर उसके घर के बगल में ही एक साँप था; साँप भी जहरीला। वह इन्सानी साँप था। उसने आज तक भोली-भाली अबलाओं को ही फँसाना सीखा था। वह इस हुनर में उस्ताद था। लखपति घराने का वह बेटा विनोद अपनी जिन्दगी इसी में होम कर रहा था। दिन भर सिगरेटें फूँका करता और सिगरेट के धुएँ में औरतों की शक्ल बदशक्ल देखा करता था। उसकी नजर चम्पा पर भी पड़ गई। चम्पा को उसने एक मासूम विधवा न समझा। चम्पा को उसने विधान का वह कुसुम भी न समझा जो तकदीर की मारी दोबारा शादी भी न कर सकती थी और जो हिन्दुस्तान के संस्कार की आग में जल-जल कर होम बनने को ही बनी थी। विनोद ने यह सब कुछ नहीं सोचा। उसने उस वेद की सी तपस्विनी नारी पर डोरे डालना शुरु किया। लाख रुपये का

उसका घर था। बहुत से नौकर-चाकर और दाइयाँ उसके रुपयों पर पलती थीं। विनोद ने उन्हें बुला कर कहा—चम्पा मुझे मिलनी ही चाहिये। हरिदास कितना लेगा!! हाय रे अभागे विनोद! तू धन का मदमाता! हर कुछ का सौदा धन से ही करना चाहता है? तेरी नजर में इस्मत और किस्मत सब धन पर ही बेची और खरीदी जा सकती है! तेरे पास दौलत है तो बहू-बेटियों की इज्जत तेरी मुट्ठी में है! विद्वानों की विद्या तेरी गिरवी है! सब कुछ, तेरा कि तेरे पास चाँदी का रुपया है। उसने अपने नौकरों से पूछा—चम्पा कैसे मेरी होगी?

उन लोगों ने कहा—सब कुछ हो जायगा सरकार! सिर्फ रुपये खर्चने की जरूरत है।

मगर चम्पा उसकी नहीं हुई तो विनोद ने एक दिन गुण्डे लगा कर चम्पा को हरिदास की गैरहाजिरी में उड़ा लिया और ले जा कर एक ऐसे शहर में रखवा दिया जो हरिदास की कल्पना के बाहर था। आप पूछेंगे कि चम्पा चली क्यों गयी? तो मैं पहले ही लिख दूँ कि चम्पा अपनी खुशी से हरगिज नहीं गई। उसे बेहोश कर उड़ा लिया गया!! और जब हरिदास घर पर लौटा तो चम्पा को न पाकर वह रोया, तड़पा, उछला-कूदा और जमीन पर गिर पड़ा।

इधर चम्पा के पास विनोद बन-ठन कर पहुँचा। वह आज विजयी था। वह चम्पा को, अबला विधवा चम्पा को उसके गरीब भाई और टूटी झोपड़ी से उड़ा कर यहाँ ले आया था। वह आर्य-बहादुर आज मगन होकर चम्पा के पास पहुँचा तो चम्पा कुछ न बोली। वह शान्त थी, समुद्र की तरह और उसने विनोद से धीर होकर पूछा—तुम मुझे यहाँ क्यों लाये?

विनोद बोला—मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।

तब चम्पा चमकी—मेरे लिये क्या कर सकते हो ?

उसने कहा—सब कुछ !

चम्पा बोली—फिर सोच लो, अभी भी समय है !

विनोद तड़पा—हाँ, मैंने सोच लिया है। मैं हजार बार तुम्हारे नाम पर सब कुछ कर सकता हूँ।

तो पीछे नहीं हटना होगा !

कसम माता-पिता की ! पीछे नहीं हटूँगा।

तब चम्पा बोली—मेरी आँखों को गौर से देखो—ये क्या हैं ?

विनोद ने आँख गड़ा कर देखा—एक अबला के आँसू छलक रहे थे !!

चम्पा फिर बोली—मेरे हाथों को देखो !

विनोद ने देखा—चूड़ियाँ फूटी पड़ी थीं। हाथ बिलकुल खाली थे, नंगे !

चम्पा ने फिर कहा—मेरी माँग को देखो। सिन्दूर धुल गया है। क्या सिन्दूर तुम फिर से भर सकोगे ?

तब विनोद गहरे सोच में पड़ गया। मैं राजपूत ! यह वैश्य। यह कैसे होगा ? मैं अमीर महल का रहने वाला। यह फटा चिथड़ा ढकने वाली ! नहीं यह नहीं होगा। (और मैं इसका लेखक कुछ और जोड़ देने का हक चाहता हूँ कि इस आवारे विनोद को सच्चे आर्य-प्रेम की भूख न थी। वह तो एक भँवरा था जो फूल का रस चूसना चाहता था। बस, विनोद उतना ही था और उतना ही जानता था)।

विनोद बोला—यह मुझसे न होगा। मैं तुम्हें अपनी रखेली बनाकर रखूँगा।

चम्पा चौंकी, उसने कहा—जिस दिन मेरी माँग धुल गई,

उसी दिन से एक चीज और भी अपने साथ रखी है। क्या तुम देखोगे ?

विनोद ने कहा—निकालो !

तब चम्पा ने कुर्ती के भीतर से एक पीले रंग का धागा निकाला और कहा—चौंको नहीं ! यह सिर्फ धागा है जिसे रक्षा-बन्धन कहते हैं। लो, तुम इसे मेरे हाथों में बाँध दो या मुझे तुम अपने हाथों में बाँधने का हक दो। उसके बाद जो चाहो मेरे शरीर के साथ करो !!

और इतना कह कर चम्पा ने अपनी उन आँखों के उन आँसुओं को विनोद की ओर स्थिर कर दिया। हाथ भी उसके हिले-डुले मगर चूड़ियों के अभाव में न खनके, न बजे !

तब विनोद बड़ा घबड़ाया। उसके दिल में एकाएक क्या उठा कि वह उठ खड़ा हुआ। चम्पा के पास पहुँचा। चम्पा की आँखों को एक बार देखा और उसके बाद चम्पा के हाथों से राखी छीनते हुए उसने कहा—चम्पा बहन ! लो मेरे हाथों में राखी बाँध दो !

दूसरे दिन भोर होने के पहले ही चम्पा अपने भाई के यहाँ पहुँच गई थी !

और कहानी-कला के विरुद्ध एक बात और मैं जोड़ देता हूँ कि उसी विनोद ने फिर एक दिन चम्पा की शादी एक ऐसे पात्र से करा दी जो सच्चे अर्थ में आर्य्य-पुत्र था, जिस पर चम्पा के दो-दो भाई हरिदास और विनोद दोनों को पूरा विश्वास था कि अब उनकी बहन चम्पा का सुहाग इस ब्रह्माण्ड में कोई तोड़ नहीं सकता ! समाज या समाज का भूत भी नहीं !!

—:※:—

इन्सान जीता है !

मैं मुहम्मदगंज का रहनेवाला एक हिन्दू हूँ। मेरी ही बगल मे शेख रमजानअली रहते हैं। मैं रमजानअली को बहुत चाहता हूँ। अपने हिन्दू भाइयों से भी ज्यादा, क्योंकि उसमें एक ऐसी जिन्दादिली है जो मैं किसी और आदमी में नहीं पा सका हूँ। वह मेरे हर काम आता है। हम लोग दोनों बचपन से साथ ही खेले-कूदे और बड़े हुए। अगल-बगल में हम दोनों का घर है। मैं और रमजानअली! मैं हिन्दू हूँ, रमजानअली मुसलमान! फिर भी हमारे इस देहात में हिन्दू-मुसलमान का कोई भेद-भाव नहीं। वह भी इन्सान है, मैं भी। वह भी अन्न खाता है, कपड़ा पहनता है और हवा से साँस लेता है, मैं भी। फिर इन्सान-इन्सान में फर्क कैसा? मै कोई फर्क नहीं मानता। रमजानअली भी नहीं। उसके बाल-बच्चे मेरे घर आते हैं। मेरे बाल-बच्चे उसके यहाँ जाते हैं। मेरे शादी-ब्याह में रमजानअली की बीबी आती है। उसकी शादी ब्याह में मेरी स्त्री उसके यहाँ जाती है।

हम फर्क नहीं मानते। हम दोनों दिन भर काम करके रोज शाम को एक जगह बैठते हैं तो आपस में दुःख-सुख की बात-चीत करते हैं। अपने-अपने घरों का, अपने-अपने बाल-बच्चों का और अपनी-अपनी जिन्दगी का। इस सद्‌भाव में हम लोगों का समय

बड प्रम से कट जाता है मेरे यहाँ यदि कोई तकलीफ हुई तो रमजानअली फमाते है कि खुदा ने चाहा तो कल ही यह तकलीफ दूर हो जायेगी मैं सुबह ही आपके यहाँ हाजिर होऊँगा जब मैं रमजानअली के मुँह से ये सब बातें सुनता हूँ तो मेरा हृदय भर आता है और मैं मन ही मन कह पड़ता हूँ कि रमजानअली एक इन्सान है। इस तरह हम दोनों की जिन्दगी कट रही थी।

लिखते-लिखते पर्व-त्यौहार की बात याद आई तो हमें लिखना ही पड़ेगा कि ईद-बकरीद में जब और दूसरे शहरों में गौएँ काम आती होंगी तो रमजानअली हमारा ख्याल करके या गाँव-घर का ख्याल कर के इस सब बातों से बड़ा परहेज करते थे। भूले-भटके भी दिल में यह ख्याल न लाते थे। मुझमें और उनमें कोई भेद न था। हम दोनों एक थे। हमारा गाँव एक था। गाँव में मन्दिर था, मस्जिद थी। मगर खुदा एक थे। भगवान एक थे।

एक दिन बाहर का एक आवारा आदमी हमारे यहाँ पहुँचा। उसकी शक्ल गुण्डों जैसी थी। बाल उसके बिखरे हुए थे और दाँत निकले हुए थे। उसने रात को एक मीटिंग की और चुपके से दो-चार-दस लोगों को जमा कर कहा कि हिन्दू हम पर अत्याचार करते हैं। हिन्दुओं के साथ हम कभी सुखी नहीं रह सकते। मुगलों के जमाने में हिन्दुस्तान हमारा था। आज भी हमारा है। हम गुलाम रहेंगे तो रहेंगे मगर हिन्दुओं के साथ नहीं रहेंगे। हिन्दू हमारा धर्म-कर्म सब ले बैठेंगे। हिन्दुओं से हमारा कभी नहीं पटेगा। हम एक हैं, हिन्दू दूसरे।

लेकिन रमजानअली पर इसका कोई असर नहीं पड़ा। दूसरों पर पड़ा या नहीं, मैं नहीं कह सकता। तब एक दूसरे मौलवी आये। ये मुस्लिमलीगी थे। क्योंकि हिन्दुस्तान में दो जमातें अब तक पैदा हो चुकी थीं। एक हिन्दू-महासभा और दूसरी मुस्लिम-

लीग। दोनों एक दूसरे के जानी दुश्मन हो रहे थे। हिन्दू-महासभा कहती थी—ये मुसलमान देश के गद्दार हैं। जब तक ये बाधा डालेंगे, अंग्रेज हमें स्वराज्य नहीं देंगे। ये कुराफाती मुसलमान चिल्ला-चिल्ला कर कहते थे—हिन्दू बुतपरस्त हैं; हमारे धर्म-विद्रोही। हमारा उनका मेल नहीं हो सकता। स्वराज्य मिले या न मिले!

और दूसरे मौलवियों ने गला साफ कर, उठ कर और हाथ उठा कर देहात की उन जमातों को समझाना शुरू किया कि हिन्दुओं के साथ रहने में हम मुसलमानों का कदापि हित नहीं। हमें अपना स्वतंत्र मुल्क चाहिये, जहाँ खुदा का नूर बरसेगा और बहिश्त बनेगा। हिन्दुओं के हिन्दू नेताओं ने गला फाड़-फाड़ कर समझाया कि हिन्दुस्तान हिन्दुओं का! भारत हमारा!!

तब उसके बाद दो-चार-दस लीगी नेता आए और इसी तरह दो-चार-दस हिन्दू फिरका वाले थे। पहले तो आपस में नेता लोग ही झगड़े। मगर कुछ दिनों के बाद खुल्लम-खुल्ला दोनों में युद्ध होने लगा। मौलवी भी आते गये, पंडित भी आते गये। मौलवी ने कुरान की कस्में मुसलमानों को पढ़ाईं। तो हिन्दू पंडितों ने हिन्दुओं को रामायण छुलाई।

और इन्हीं सब काण्डों के बीच देश का बटवारा हो गया। बटवारा तो हुआ मगर इसमें दोनों तरफ़ से खून की होली खेली गई। हुआ तो वही जो होना था। मगर इन मौलवी और पंडितो के फेर में पड़ कर लाखों कट गये और दिल्ली लुटा तो लाहौर भी बाकी न रहा। कलकत्ता खून से भीगा तो पटना भी न चूका। दाढ़ियाँ यदि नोची गईं तो चोटी भी न बचीं। मगर अब भी रमजानअली उसी गाँव में मौजूद थे जिस गाँव में हम जन्मे, पले और बढ़े थे।

एक दिन बड़ा हल्ला हुआ कि बगल के शहर में दंगा हो गया।

हिन्दू मुसलमान एक दूसरे का गाजर-मूली की तरह काट रहे हैं यह आग यहाँ तक फैली कि हमारे गाँव के करीब पहुँच गई तो हम और रमजानअली दोनों एक जगह पर इकट्ठे हुए। मैंने रमजानअली से कहा—तब ?

रमजान अली ने भी कहा—तब ?

हमने कहा—यह आग अब हमारे गाँव में भी लगने से बाज नहीं रहेगी। जिस गाँव में हम लोगों ने जीवन के छप्पन वर्ष गुजारे, वही गाँव आज इस आग में जल कर राख हो जायेगा। अतः चलो, दोनों चलें और ज्यों ही हमारे गाँव में ये बाहर के लोग हमला करें या हिन्दू मुसलमानों के बीच दंगा फैलावें कि हम दोनों उन आने वाले आततायियों का गला घोंट दें। यदि हमारे गाँव की सरहद पर पैर रखें तो उनके पैर उखाड़ दें। उनके मुँह नोच डालें।

और सुबह से ही हम दोनों—हम और रमजानअली गाँव की सीमा से बाहर अपनी-अपनी तलवार लेकर खड़े थे। आखिर वह हुजूम आया। दंगाई आये। एक पार्टी ने कहा—अल्ला हो अकबर ! दूसरी पार्टी ने कहा—जय बजरंग बली की !! तब तलवारें चमकने लगीं ? और खूब चमकीं। चमकते-चमकते हमारे गाँव की सीमा तक पहुँचने लगीं। यह देख हमने रमजानअली से कहा— तब ?

रमजान अली ने भी कहा—तब ?

हमने पूछा—तुम्हारे साथ मुसलमान कितने हैं ?

रमजान अली ने कहा—इक्यावन।

हमने कहा— हमारे साथ तिरासी हिन्दू हैं। तुम इक्यावन मुसलमानों को लेकर मुसलमानों का सामना करो। अगर वे हमारे गाँव में घुस कर विद्रोह की आग सुलगाना चाहें और मुसलमानों

में दंगा कराना चाहें तो बिजली की तरह टूट पड़ो, ऐसे, जैसे जालिम पर इन्सान टूट पड़ता है।

और बड़ा डट कर मुकाबला हुआ। गाँव के इक्यावन मुसलमान आये हुए मुसलमानों पर टूट पड़े। और गाँव के तिरासी हिन्दू ठीक इसी तरह आये हुए दंगाई हिन्दुओं पर गरज पड़े! बड़ी लड़ाई हुई। मगर विधाता ने सत्य की लाज रखी। भाईचारा जीता और नतीजा यह हुआ कि और जगहों में जब कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बना और उसके भेद-भाव बढ़े तब हमारे गाँव में इस तरह की कोई चीज नहीं बनी। वहाँ जो आज भी जिन्दा है, वह है इन्सान! इन्सान जिन्दा है। इन्सान जीता है! हालाँ कि वह इन्सान हिन्दुस्तान में रह रहा है और नाम है रमजानअली।



नया-पुराना

चूँकि कि सुरेश माँ-बाप का इकलौता बेटा था इसलिये उसका लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से हुआ था। उसके माँ-बाप अमीर थे। ऑनरेरी मजिस्ट्रेट का सरकारी ओहदा भी मिला था। पिता श्रीधर बाबू की जिन्दगी ही हाकिमों की खुशामद में बीती थी। इसलिये बेटे सुरेश पर भी इसका बहुत कुछ असर पड़ा था। श्रीधर बाबू में खानदान की तरह से यही रीति चली आती थी कि हर चौथे-छठे दिन अफसरों को पार्टियाँ दी जातीं। ताश होते, बच्चों को आधुनिक ढंग से रहने की तालिम दी जाती। जिनका कुछ ओहदा या स्थान है, वे ही बड़े हैं; उन्हीं से मिलने-जुलने की शिक्षा दी जाती। जो बगैर ओहदा के लोग होते वे सब उस खानदान में ओछे, व्यक्तित्वहीन और हीन माने जाते। सुरेश को भी शिक्षा दी गई कि वह किन लोगों से मिले और किन लोगों से नहीं।

सुरेश का संस्कार कुछ ऐसा हो चला था कि बचपन ही से वह अपने को और लड़कों से बड़ा मानता। मुहल्ले टोले में खेलने जाता या स्कूल में पढ़ने जाता, जहाँ कहीं भी जाता, उसका बराबर ख्याल रहता कि वह इन तमाम लड़कों से ऊँचा है और उसकी शान निराली है। जो लड़के सीधा-सादा पहनते, सरल

जीवन रखते, लगन से पढ़ते-लिखते, ऐसे तमाम लड़कों से उसे चिढ़ रहती। उसकी दोस्ती होती भी, तो ऐसे ही लड़कों से जो पहनने-ओढ़नेमें स्टाइल का ख्याल रखते। जुल्फें जरा फेर कर कंघी करते। जिनके जूते खूब चमका करते और जो सैर-सिनेमा के बड़े शौकीन होते। इस तरह सुरेश की पढ़ाई-लिखाई तो चौपट हुई ही मगर जवान होते-होते आदतें ऐसी-ऐसी पड़ गईं कि बगैर उसे देखे विश्वास दिलाया भी नहीं जा सकता। इसलिये संक्षेप में हमें लिख देना होगा कि वह एक तरह से आधुनिक मजनू होता चला गया।

और तब एक दिन उसके पिता श्रीधर बाबू और माँ को बड़ी चिन्ता हुई कि सुरेश की शादी हो जाय। शादी के बारे में सुरेश के कुछ खास विचार थे, जो बहुत कुछ माता-पिता से मिलते-जुलते थे। सुरेश अपनी संगिनी एक ऐसी लड़की को बनाना चाहता था जो खूबसूरती में अनुपम हो, खूब गोरी हो और बिल्कुल आधुनिक हो।

माता-पिता ने तरह-तरह की लड़कियों के फोटो मँगवा दिये और चुनाव शुरू हुआ। अन्त में सुरेश ने अपनी संगिनी एक ऐसी लड़की को चुना जो हिन्दी तो बहुत कम मगर अंग्रेजी ज्यादा जानती थी। पाउडर-स्नो के व्यवहार में उस्ताद थी और जिसे हर तरह से एक आधुनिक लड़की कहना ही उचित होगा।

तो सुरेश और शीला की शादी गाजे-बाजे के साथ एक दिन धूम-धाम से हो गई और शीला सुरेश की संगिनी बन श्रीधर बाबू

के घर चली आई। आते ही शीला ने घर में बहुत से परिवर्तन किये। यह फर्नीचर यहाँ नहीं रहेगा, वहाँ ठीक होगा। सोफों का स्थान बदल दो। डाइनिंग-किचेन सब अंग्रेजी स्टाइल से सजाये गये और देख-देख कर श्रीधर बाबू, उनकी स्त्री और सुरेश, सब बड़े प्रसन्न हुए। लक्ष्मी बहू ने आते ही घर को आदर्श बना दिया!

मगर शीला को एक बात बड़ी खटकी! उसी घर में सुरेश का चचेरा भाई भी रहता था, जिसकी स्त्री थी सीता। चचेरा भाई होने के कारण यह न समझें कि उसका कोई मुकाबला सुरेश से था, नहीं—चचेरे भाई सुमन के पिता उसे बहुत बचपन में ही छोड़ कर मरे थे और लाचारी हालत में श्रीधर बाबू को सुमन का भार उठाना पड़ा था। अतः सुमन से वे अपने फर्म में एक मुनीम का काम लिया करते थे। उसकी स्त्री सीता घर में रसोई वगैरह का काम सँभालती थी। बाहर का कोई आदमी आता तो श्रीधर बाबू या सुरेश को इनके बारे में कुछ कहने में बड़ी झिझक मालूम होती थी।

शीला को सीता न भाई। उसे सीता एक अपढ़ गँवार औरत लगती थी। शक्ल सूरत भी भद्दी थी। काली, बेडौल! शीला को स्वभाव से ही बदसूरत लड़कियों से चिढ़ थी। लड़की और काली! राम! राम!! मर जाना चाहिये। सो जब कभी शीला सीता को देखती तो मुँह फेर लेती। कुछ कहना भी होता तो दूर से ही कहला देती। ऐसा व्यवहार करती मानो कोई छूत-अछूत हो! सीता की आदत रात को प्रायः रामायण-महाभारत पढ़ने

इस बीच शीला को देखने कोई हाकिम-हुक्काम, रईस की बहू-बेटी नहीं आई। कैसे आती?

सिर्फ बीमार शीला थी और सेविका सीता!

उसके बाद भगवान की लाख-लाख दया से शीला अच्छी हो गई तो उसने मंदिर जाने की इच्छा प्रकट की और बेहद आश्चर्य से लिखना पड़ता है कि मन्दिर से लौटते ही वह सबों के सामने सीता के चरणों पर पड़ गई और बराबर अपने आँचल से उन्हें पोंछने लगी—मानो उनकी धूलि लेना चाहती हो, मानो उनकी बलैयाँ ले रही हो, मानो सीता के चरणों में ही उसका जीवन धरा पड़ा हो! तब उसने रोते हुए कहा—सीते! तुम मेरी जनम-जनम की बहन हो। अरे बहन! जरा धीरज से खड़ी तो रह, मैं तेरे चरणों की आरति तो ले लूँ!!

सुरेश की माँ और श्रीधर बाबू, सुरेश और सुमन सब एकटक एक दूसरे को निहारते रहे! देखते रहे!!



अन्तिम उपहार

मेरी माँ ने मुझे एक अँगूठी दी और कहा—बेटा! इसे तुम अपनी बहू को देना। यह तुम लोगों के विमल-प्रेम की निशानी रहेगी।

मैं अपनी स्त्री को बहुत मानता था। मैंने वह अँगूठी अपनी स्त्री को देते हुए कहा—यह हम दोनों के पवित्र प्रेम का पवित्र बंधन-सूत्र है। यह मेरी माँ ने मुझे दी है। मैं इसे तुम्हें भेंट करता हूँ।

मेरी स्त्री के सुन्दर मुख पर उस क्षण प्रेम का अति सुन्दर रूप छलक पड़ा। जैसे कृष्ण को देख कर राधा के मुखपर या राम को देख कर सीता के मुख पर! मैंने अँगूठी अपनी स्त्री के हाथों में पहना दी।

उसके बाद कुछ बरसों तक तो हम दोनों का हृदय एक रहा और प्रेम नित्य बढ़ता ही गया। अँगूठी भी उसके हाथों में हमेशा खूब सुन्दर चमका करती।

होते होते न जाने कैसे मेरा मन अपनी स्त्री से फिर गया। सो वह अब फिरता ही गया। अब उसमें मुझे ऐब नजर आने लगे। अब मुझे वह असुन्दर लगने लगी। अब वह मेरा काँटा होने लगी।

एक दिन वह अँगूठी खोल कर स्नान को गई तो मैंने अँगूठी चुपके से उठा ली और जब वह स्नान से लौटी तो अँगूठी खोज-खोज कर बड़ी रोई क्योंकि यह उसके प्रेम की निशानी थी। अँगूठी खो कर वह जीना नहीं चाहती थी। मगर अँगूठी उसे नहीं ही मिली। उसे लगा—यह घोर अपशकुन हुआ है।

फिर भी उसे मेरे प्रेम पर विश्वास बना ही रहा। मगर मैं ही बड़ा छलिया निकला!

मैंने वह अँगूठी मुहल्ले की एक दूसरी नागिन स्त्री को दे दी। उस स्त्री ने मुझ पर डोरे डाल दिये थे। मेरा मन फिर गया था। मैं अपनी स्त्री से चाल खेल गया।

मगर उस नागिन स्त्री ने मेरी अँगूठी छीनी, मेरे रुपये ठगे, मेरे जेवर ठगे, मेरी इज्जत लूटी और एक रोज साफ-साफ कह दिया—निकल जाओ मेरे यहाँ से। तुझ जैसा उल्लू एक ही यहाँ आया। तो मुझको बड़ी चोट लगी। मेरा सब कुछ छीना,

फीर भी मुझे उल्लू कहा और निकाल दिया। मेरा बड़ा अपमान हुआ।

उसके बाद उस स्त्री ने उस अँगूठी को एक दूध वाली के हाथ बेच दिया—सत्रह रुपये में। मेरे प्रेम की अँगूठी की कीमत सत्रह रुपये लगी! और सो भी एक दूध वाली के हाथों! और इधर मेरी स्त्री बराबर रोती रही कि प्रेम की निशानी अँगूठी खो गई! कोई बड़ा बारी अपशकुन होने वाला है! यह उसके जीवन का सब से बड़ा धन था। मैंने इसे बड़े प्यार से उसे पहनाया था। इस अँगूठी में मेरा पवित्र हृदय छिपा पड़ा था जिसे मैंने अपनी स्त्री को भेंट किया था! वह बेचारी समझती रही कि अँगूठी खो गई। उसे क्या पता कि उसका छलिया चोर उसके ही घर में डाका डालने पर आमादा हो गया था!

और एक दिन वह दूध वाली उसी अँगूठी को मेरी स्त्री के पास बेचने ले आई। मेरी स्त्री ने अँगूठी को बड़े गौर से देखा। तब उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने दूध वाली को बड़ा बुरा-भला कहा। उसे डाँटा, उसे फटकारा, उसे शाप दिया!!

फिर भी मेरी स्त्री ने उस अँगूठी को उसके मुँह-माँगे दामों पर खरीद लिया!

अँगूठी फिर मेरी स्त्री के पास पहुँच गई!!

मैंने फिर जब उस अँगूठी को अपनी नेक स्त्री के हाथ में देखा तो मेरा माथा चकरा गया! मैं कुछ सोच न सका। मेरा सारा दिमाग घूमने लगा। पृथ्वी घूमने लगी और आसमान

भी घूमने लगा। मेरे हृदय से तब, हाहाकार से भरी एक आवाज उठी—

धिक्कार है रे अधम–तुझे लाखबार धिक्कार है !!

और उसी क्षण, मैं अपनी स्त्री के चरणों में लिपट गया !!

यह अँगूठी मेरी माँ ने दी थी !!!



ज्योतिप्रकाश नाम नया है, लेकिन साहित्य-सेवा उनकी पुरानी है। सन् १९३४ से आप साहित्य की सेवा करते रहे, ज्योतिन प्रसाद आपका नाम था। उसी नाम से लिखते रहे। १९३९ में आप व्यवसाय में घुसे तो कुछ ऐसा हुआ कि लिखना छूट-सा गया; लेकिन अध्ययन-मनन तो चलता ही रहा। अब इतने दिनों के बाद, '५५ में, वे फिर से साहित्य-क्षेत्र में आ रहे हैं और ज्योति-प्रकाश के नाम से।

आप राँची जिले के सुप्रसिद्ध रईस रायसाहब बलदेव साहु के परिवार के हैं। सन् २० में आपका जन्म हुआ था। सन् ३४-३९ में 'बाल-विनोद' का सम्पादन किया, अनेक किताबें लिखीं, और भी फुटकर चीजें इधर-उधर लिखते रहे। उन दिनों किशोरोपयोगी साहित्य का भी काफी निर्माण किया।

आज-कल आप डालटनगंज (पलामू) में रहते हैं।

आपकी पुस्तकें :—

- झिलमिल (उपन्यास)
- बुलबुल (कहानी-संग्रह)
- दिल की गहराई से (दो भाग : चित्रात्मक विचार)
- धूप और छाया (कहानी-संग्रह)
- सीधा रास्ता (उपन्यास)

इन दिनों 'धरती' का सम्पादन भी कर रहे हैं।

—राधाकृष्ण